जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग - ६)

७. भोगभूमि आर्य

६. श्रीधर देव

५. सुविधि राजा

८. वज्रजंघ राजा

४. अच्युतेन्द्र

९. ललितांग देव

३. वज्रनाभि राजा

१०. महाबल राजा

२. अहमिन्द्र

१. प्रथम तीर्थंकर
श्री आदिनाथ भगवान

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ - ३६४ २५०

श्री आदिनाथ भगवान

श्री धातकी विदेहके
भावी तीर्थंकर

श्री जम्बूभरतके भावी
महापद्म तीर्थंकर

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२६४

ॐ

नमः सद्गुरुवे।

सुवर्णपुरीके श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंबी ज्ञानी धर्मात्माओंके जीवन पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-६)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-364 250
website :www.kanjiswami.org
Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति प्रत : १५०० वि. सं. २०७४ ई.स. २०१८

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-६के

स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता

स्व. सूरजमलजी चंपावत, उदयपुरके स्मरणार्थ
हस्ते अर्चना मुक्तेश, अनुभूति चिदेश,
क्षायिक, मीमांसा चंपावत

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-६के

स्थायी किंमत कम करनेवाले पुरस्कर्ता

शरद विजयकुमार, सुरभि विशाल पंचोली
भीलवाड़ा (राज.)
खुश्बु तन्मय, किआना कोरिया, मालेगांव

मूल्य : रु. 30=00

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

अध्यात्मयुगस्रष्टा परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्त्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरसमयी आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशगंगा बहाई है; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके लाखों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने है; इस कारण सोनगढ़ एक 'अध्यात्म अतिशयक्षेत्र' सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया है। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी रचना हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको मुनि भगवंतों व आत्मज्ञानी महापुरुषोंके जीवनसे बहुत लगाव था। जिससे वे उक्त महापुरुषोंके जीवनसे अपने जीवनमें संवेग-वैराग्यभावको वृद्धिगंत करती रहती थीं। वे महिलासभामें भी सभीको आत्मज्ञानी धर्मात्मा महापुरुषों व सतीयोंके जीवनके प्रसंग बहुत आर्द्रभावसे बताती थीं। उन प्रसंगोंमेंसे कई प्रसंग ऐसे होते कि जिससे निरुपराग उपयोगरूप मोक्षमार्ग पर आत्मार्थीयोंको महत्त्व आये। ऐसे प्रसंगोचित कथाओं आधारित विविध पौराणिक चित्र उक्त आयतनोंमें उन्होंने मुख्यरूपसे अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। जिनमें निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे ही दृश्य इन चित्रोंमें मुख्यरूपसे उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंकी शोभा बढ़ गई है, एवं इन आयतनोंके दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंको वृद्धि करनेका लाभ मिला है।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममें पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती वीतरागी महापुरुषोंके प्रति अहोभाव, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेव रचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें कथाएँ दी थी। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंकी सात कथाओंका **"जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-१"** व श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरमें अंकित पौराणिक चित्रोंके आधारसे **"जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-२"**, सुवर्णपुरीमें स्थित प्रवचनमंडपमें लगे चित्रोंमेंसे शुद्धात्मद्रव्यमें प्रतिबद्ध रहते ज्ञानी भगवंत कैसे सहज 'उपसर्ग विजयी' होते हैं, उन धर्मात्माओंके चित्रोंकी कथा संबंधित पुस्तक **"जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-३"**, प्रवचनमंडपके उक्त सात चित्रके अलावा अन्य चित्रोंकी आचार्योंकृत पुराण आधारित कथाएँ **'जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४'** व परमागम मंदिरके चित्रोंकी आचार्यकृत पुराण

आधारित कथाएँ **''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-५''**के रूपमें प्रकाशित हो चुकी है।

इस पुस्तकमें सुवर्णपुरी स्थित पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयके चित्रोंकी आचार्यकृत पुराण आधारित कथाएँ **''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-६''**के रूपमें प्रकाशित हो रही है।

इन चित्रोंमें एक चित्र विमलनाथ भगवानके पूर्वभवका है, जिसमें ''उन्हें भगवानकी वाणी द्वारा ज्ञात होता है कि वे भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले है''—तो उनका आनंद फूला नहीं समाता था, अतः उन्होंने अन्य राजाओंको आमंत्रित करके स्वयं तीर्थंकर हो न गये हों इस भांति भारी उत्सव मनाया था। जिससे ज्ञात होता है कि वर्तमानमें तीर्थंकर नहीं हुए होने पर भी ज्ञानी जीव स्वयं अपना तीर्थंकरत्वका उत्सव मना सकते हैं।

उसी भांति धर्मनाथ तीर्थंकर, अनंतनाथ तीर्थंकर, पद्मप्रभ तीर्थंकर पूर्व भवोंमें धातकीखंडमें वे सम्यक् रत्नत्रयपूर्वक वैराग्यसे मुनिदीक्षा धारण करते हैं। ये चित्र भी पूज्य बहिनश्रीने भावविभोर होते हुए बनवाये थे। इस जिनायतनके अन्य चित्रोंमें कहानगुरु जीवनदर्शन, आदिनाथ भगवानके भव, पंचकल्याणक, पंचपरमेष्ठी, गुरुदेवश्रीके नव भव भी चित्रित किये है।

तदुपरांत यह जिनालय बनानेका मूल हेतु ही 'पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत'को संगमरमरके शिलापटों पर अंकित कराकर लगानेका होनेसे इस आयतनमें ऊपर 'पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत अंकित है, व पूज्य गुरुदेवश्रीकी स्मृति इस भवनसे जुड़ी होनेसे इसमें नीचे 'पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत' संगमरमरके शिलापट पर अंकित किये है, पूज्य बहिनश्रीकी भावना थी कि कोई दर्शनार्थी ऊपर न जा सके तो कमसे कम नीचे लिखे पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत पढ़कर अपना आत्मकल्याण कर सके । अतः इस पुस्तकमें दोनों वचनामृतके मुखपृष्ठका चित्र भी लिया गया है।

इस पुस्तकमें आवश्यकताके अनुरूप मूल कथाकी हकीकत एवं हार्दको यथावत रखकर भाषामें सामान्य सुधार किया है।

पुस्तकका मुद्रण स्मृति ऑफसेट द्वारा किया गया है। हम उनके आभारी है।

इस पुस्तककी कथायें संक्षिप्त स्वरूपमें पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयके चित्रोंके दृश्योंकी आधारित दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र पुस्तक महापुरुषोंके प्रति अपनी समर्पणतामय भक्ति, आदररूप सहज जीवन गढ़नेमें व अपने संवेगादि भावोंको बलवत्तर करनेमें कार्यकारी होगा।

पूज्य गुरुदेवश्रीकी 129वीं
जन्मजयंती
सोनगढ
ता. 17-4-2018

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालय परिचय

पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयकी
शिलान्यासविधि करते पूज्य गुरुदेवश्री

'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके सम्बन्धमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी अटलधारा, प्रसन्नता तथा अहोभाव देखकर-सुनकर कितने ही मुमुक्षुओंको उनके अमूल्य वचनामृतोंको संगमरमरके शिलापट पर उत्कीर्ण करवानेकी भावना जागृत हुई।

यह बात पूज्य गुरुदेवश्री समक्ष प्रस्तुत होने पर पूज्य गुरुदेवश्रीने ऐसी भावना व्यक्त की कि 'वचनामृत उत्कीर्ण करवाकर' बहिनश्रीके (पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके) नामका एक स्वतंत्र मकान बनाना चाहिये।

तत्कालिन ट्रस्टके प्रमुख श्री रामजीभाईने पूज्य गुरुदेवश्रीकी भावनाको शिरोधार्य करकर निर्णय लिया कि 'बहिनश्री चंपाबेन वचनामृत

भवन'का निर्माण करना। उसकी शिलान्यास विधि वि.सं. २०३७ (ई.स. १९८०) कार्तिक शुक्ला-५के शुभ दिन पूज्य गुरुदेवश्रीकी उपस्थितिमें उन्हींके पवित्र करकमलोंसे हुआ।

वचनामृतभवनके शिलान्यास-विधिके सम्पन्न होनेके पश्चात् कतिपय दिनोंमें (पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुपस्थितिमें) ट्रस्टीओं तथा कार्यकर्ताओंने वचनामृत भवनका विस्तृतिकरण करके उसमें पंचमेरु-नंदीश्वरकी प्रतिष्ठित रचना करनेका निर्णय लिया तथा उसमें 'पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत' संगमरमर पर उत्कीर्ण कराकर दिवारों पर लगानेका निर्णय लिया गया।

तद् अनुसार पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन साहित्यमेंसे वीतराग मार्गको स्पष्ट करनेवाले वचनोंका 'पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनामृत'के रूपमें संकलन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्टने करवाया।

मुमुक्षुओंको पूज्य गुरुदेवश्रीका विरह बहुत ही खलता था। अतः उस विरहकी

पंचमेरु–नंदीश्वर जिनालयके प्रतिष्ठेय भावी तीर्थंकरोंके दर्शन करते पूज्य बहिनश्री
(उनके निवासस्थान पर)

वेदनाको मंद करने हेतु पूज्य गुरुदेवश्रीका भावी मुख्य जीवन तीर्थंकरत्वरूप होनेसे उसकी प्रतिकृति बिराजमान करनेके भाव भक्तोंको आयें।

तब उस समयके ट्रस्टीमंडलके मुख्य कार्यकर्ताओंने इसी वचनामृत भवनके उपरके भागमें मूलनायक आदिनाथ भगवान व उनकी एक ओर धातकीखण्डस्थ भावी तीर्थंकर तथा दूसरी ओर जम्बूद्वीपस्थ भावी तीर्थंकर (महापद्म तीर्थंकर)–दो प्रतिमा सहित तीन प्रतिमाएँ बिराजमान करनेका निर्णय लिया गया।

मंदिर शिलान्यासके समय पूज्य गुरुदेवश्रीकी उम्र ९१ वर्ष की होनेसे यह मंदिर ९१' उन्नत बनाया गया है।

तदानुसार मंदिर निर्माणकी पूर्णता होने पर वि.सं. २०४१ (ई.स. १९८५) फाल्गुन शुक्ला-७के दिन पूज्य बहिनश्रीकी मंगल उपस्थितिमें उक्त रचना सह पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयकी पंचकल्याणक पुरस्सर शास्त्रीय विधि अनुसार प्रतिष्ठा हुई।

यह मंदिरकी खिड़की व दरवाजों पर पूज्य बहिनश्रीके नेतृत्वमें पूज्य बहिनश्रीकी भावनानुसार पौराणिक चित्रोंको संगमरमरके शिलापट पर उत्कीर्ण करवाके लगाये गये हैं। यह मंदिर दो मंजिला होनेसे यहाँ चित्र भी सभी आयतनसे अधिक है।

यहाँ विमलनाथ भगवानके पूर्वभवका चित्र कथानुसार दर्शाया गया है कि पूर्वभवमें उन्हें भगवानकी दिव्यध्वनिसे ज्ञात होता है कि 'वे भविष्यमें भरतक्षेत्रके १३वें तीर्थंकर है, यह जान खुशीके मारे वे फूला न समाये व उन्होंने 'देशोदेशके राजाओंको बुलाकर बहुत बड़ा उत्सव किया कि मानों वे अभी तीर्थंकर न हों'। वह बताता है कि ज्ञानी अपना भावी तीर्थंकरत्व पदका उत्सव वर्तमानमें भी मना सकता है।

तदुपरांत यहाँ, जिनके पूर्व भव धातकीखंडमें हुए ऐसे धर्मनाथ भगवान, पद्मप्रभ भगवान, अनंतनाथ भगवानके चित्र भी यहाँ उत्कीर्ण हुए हैं। यहाँ आदिनाथ भगवान मूलनायक होनेसे तथा वर्तमानमें महावीरस्वामी भगवान शासननायक होनेसे यहाँ दोनोंके १० भवों व पंचकल्याणकके चित्र भी उत्कीर्ण है।

परमागममंदिरमें जो पंच परमागम संस्कृत-प्राकृतमें उत्कीर्ण किये गये है वे उत्कीर्ण करनेका मशीन ट्रस्टके प्रमुख माननीय श्री हसमुखभाई वोरा जो स्पेशल इटाली जाकर ले आये थे, उस मशीन द्वारा गुजरातीमें नये फोन्ट बनवाकरके यहाँ 'गुरुदेवश्रीनां वचनामृत' एवं 'बहिनश्रीनां वचनामृत' संगमरमरकी शिलापटों पर उत्कीर्ण किये गये हैं।

यहाँ पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनदर्शन तथा उनके भव दर्शाते चित्र भी उत्कीर्ण करवाये गये हैं। इन सभी चित्रोंकी पुराणानुसार कथाएँ इस पुस्तकमें ली गई हैं।

अनुक्रमणिका

श्री धर्मनाथ तीर्थंकर पूर्व तीसरे भवमें 11
श्री विमलनाथ तीर्थंकर पूर्व तीसरे भवमें ... 15
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके पूर्वोत्तर भव 18
श्री पद्मप्रभस्वामी पूर्व तीसरे भवमें 21
श्री अनन्तनाथ जिन पूर्व तीसरे भवमें..... 24
श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरका
पूर्व पाँचवाँ व तीसरा भव..... 26
भगवान श्री महावीरस्वामीका
केवलज्ञान कल्याणक..... 28
तीर्थंकर जिनेन्द्रदेवके आठ प्रातिहार्य..... 35
भगवान श्री आदिनाथके पूर्व भव 37
भगवान श्री आदिनाथका पूर्व दसवाँ भव ... 38
भगवान श्री आदिनाथका पूर्व नौवाँ भव..... 42
भगवान श्री आदिनाथ स्वामीका
पूर्व आठवाँ भव 44
श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व सातवाँ भव... 50
भगवान श्री आदिनाथका
छठवाँ भव श्रीधर देव..... 53
भगवान श्री आदिनाथका पूर्व पाँचवाँ भव ... 57
श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व चौथा भव 60
श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व तीसरा भव... 62
भगवान श्री आदिनाथका पूर्व दूसरा भव ... 66
भगवान श्री आदिनाथका प्रर्वतमान भव..... 68
भगवान श्री आदिनाथका गर्भ कल्याणक ... 74
भगवान श्री सीमंधरनाथके समवसरणके
भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव व
गुणियल राजकुमार..... 79
भगवान श्री आदिनाथका जन्मकल्याणक ... 80
भगवान श्री आदिनाथका तपकल्याणक..... 86
भगवान श्री आदिनाथका ज्ञान कल्याणक .. 92
बहिनश्रीके वचनामृत 94
राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यग्दर्शन 96
भगवान श्री मल्लिनाथ पूर्व तीसरे भवमें 98
नन्दीश्वर द्वीप रचना 102
भगवान श्री महावीरस्वामीके
सम्यक्त्व प्राप्ति पश्चात्के 10 भव 106
श्री शांतिनाथ भगवान पूर्व तीसरे भवमें.... 108
भरत चक्रवर्ती द्वारा मुनिन्द्र व
भगवान बाहुबलीकी पूजा 112
श्री धरसेनाचार्य द्वारा पुष्पदंत व भूतबलि
मुनिराजको उपदेश..... 114
अध्यात्ममूर्ति परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री
द्वारा पंच परमेष्ठी वंदना..... 115
जैनधर्मप्रसिद्ध आनंद मंगल सूचक
नंद्यावर्त स्वस्तिक सहित
अष्ट मंगल 116
कहानगुरु जीवन दर्शन-1 118
कहानगुरु जीवनदर्शन-2 119
कहानगुरु जीवन-दर्शन-3 120
कहानगुरु जीवन-दर्शन-4 121
कहानगुरु जीवन-दर्शन-5 122
कहानगुरु जीवन-दर्शन-6 123
कहानगुरु जीवन-दर्शन-7 124
कहानगुरु जीवन-दर्शन-8 125
कहानगुरु जीवन-दर्शन-9 126
कहानगुरु जीवन-दर्शन-10 127
कहानगुरु जीवन-दर्शन-11 128
कहानगुरु जीवन-दर्शन-12 129
गुरुदेवश्रीके वचनामृत..... 130
भगवान श्री आदिनाथको आहारदान..... 132
चेलना द्वारा जिनमंदिरोंकी स्थापना 134

श्री धर्मनाथ तीर्थंकर पूर्व तीसरे भवमें

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे भगवन्! निर्दोष धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्मका प्रतिपादन करनेवाले आगमको प्रवर्तते हुए आप गणधरदेवादि विद्वानोंके द्वारा **'धर्म'** इस सार्थक नामसे युक्त माने गये हैं। आपने तपरूपी अग्निके द्वारा कर्मरूपी वनको जलाया है तथा अविनाशी सुख प्राप्त किया है इसलिये आप सत्पुरुषोंके द्वारा **'धर्म'** नामसे युक्त माने गये हैं।

धर्मनाथ तीर्थंकरका पूर्व तीसरा भव

पूर्व धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें नदीके दक्षिण तट पर एक वत्स नामका देश है। उसमें सुशीमा नामका महानगर है। वहाँ राजा दशरथ (धर्मनाथ भगवानका पूर्व तीसरा भव) राज्य करते थे। वे बुद्धि, बल और भाग्य तीनोंसे सहित थे। चूँकि

वैशाख शुक्ला पूर्णिमाको मनाये जाते उत्सवमें चक्रग्रहणको देख वैराग्यको प्राप्त राजा दशरथ

उन्होंने समस्त शत्रु अपने वश कर लिये थे इसलिये युद्ध आदिके उद्योगसे रहित होकर वे शान्तिसे रहते थे। प्रजाकी रक्षा करनेमें सदा उनकी इच्छा रहती थी और वे बन्धुओं तथा मित्रोंके साथ निश्चिन्ततापूर्वक धर्म-प्रधान सुखोंका उपभोग करते थे। एक बार वैशाख शुक्ल पूर्णिमाके दिन सब लोग उत्सव मना रहे थे उसी समय चन्द्र-ग्रहण लगा उसे देखकर राजा दशरथका मन भोगोंसे एकदम उदास हो गया। यह चन्द्रमा सुन्दर है, कुवलयों–नीलकमलों (–महीमण्डल) को आनन्दित करनेवाला है और कलाओंसे परिपूर्ण है। जब उसकी ऐसी अवस्था हुई है तब अन्य पुरुषकी क्या अवस्था होगी।

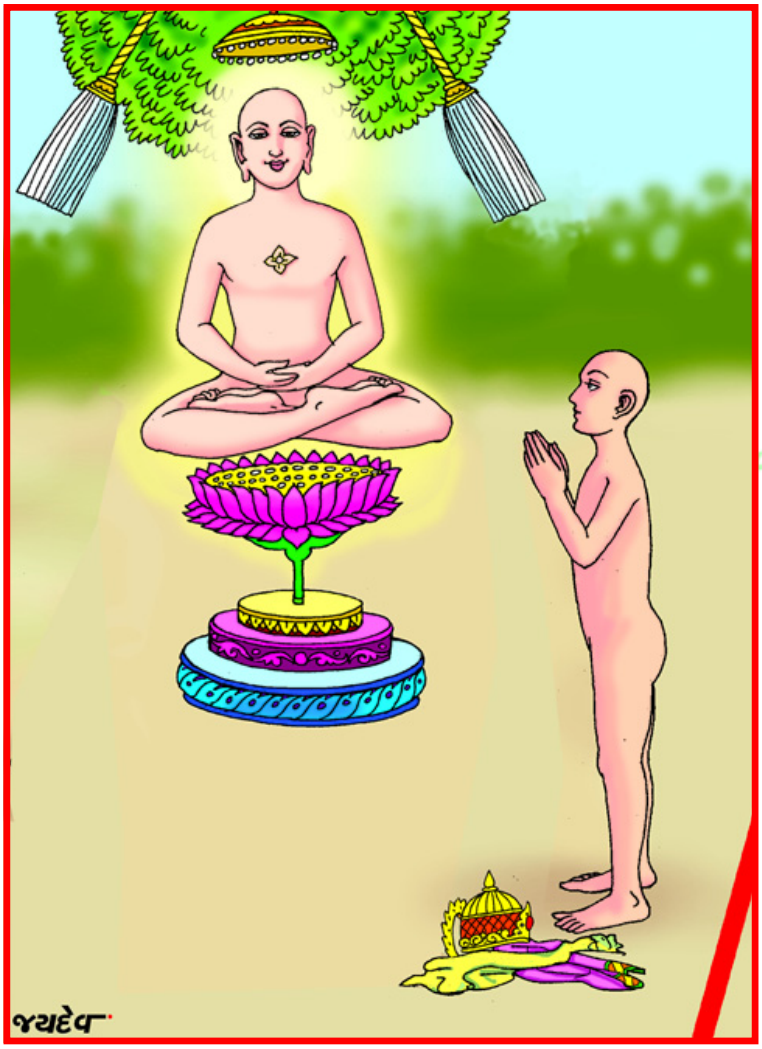

विमलवाहन जिनेन्द्रके पास राजा दशरथ द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण

यह विचारकर अत्यन्त वैराग्यवान होकर उन्होंने अपने मनकी बात व संयम धारणकी बात अपने मंत्रीमंडलमें रखी और फिर अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर विमलवाहन जिनेन्द्र भगवानके पास दीक्षा धारण करके घोर तपश्चर्या अंगीकृत की।

तपके बलसे मुनिराज दशरथको अहमिद्र पद

अब वे सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र (धर्मनाथ भगवानका दूसरा भव) हुए, तैंतीस सागरकी उनकी स्थिति थी। एक हाथ ऊँचा उनका शरीर था। चार सौ निन्यानवें दिन अथवा साढ़े सोलह माहमें एक बार कुछ श्वास लेते थे। लोकनाड़ीके अन्त तक उनके निर्मल अवधिज्ञानका विषय था, उतनी ही दूर तक फैलनेवाली विक्रिया तेज तथा बलरूप सम्पत्तिसे सहित थे। तीस हजार वर्षमें एक बार मानसिक आहार लेते थे, द्रव्य और भावसम्बन्धी दोनों शुक्ललेश्याओंसे युक्त थे। इस प्रकार वे सर्वार्थसिद्धिमें प्रवीचार रहित उत्तम सुखका अनुभव करते थे।

विशेष : यह चित्र धातकीखंडसे सम्बन्धित है जहाँ पूज्य गुरुदेवश्री तीर्थंकर होनेवाले हैं। अतः ये चित्र यहाँ लिये है।

श्री विमलनाथ तीर्थंकर पूर्व तीसरे भवमें

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–जो ही नित्य अथवा क्षणिक आदि नय परस्परमें होकर अन्यमतोंमें निज और परका नाश करनेवाले हैं, वे ही नय परस्परकी अपेक्षा रखते हुए निज और परका उपकार करनेवाले होकर प्रत्यक्षज्ञानी आप विमल जिनेन्द्रके मनमें वस्तुस्वरूप होते हैं।

पश्चिम धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वत से पश्चिमकी ओर सीता नदीके दाहिने तट पर रम्यकावती देश है। किसी समय वहाँ पद्मसेन राजा राज्य करते थे। उनकी शासन-प्रणाली बड़ी ही पवित्र थी। उनके राज्यमें न कोई वर्ण-व्यवस्थाका उल्लंघन करता था, न कोई झूठ बोलता था, न कोई किसीको व्यर्थ ही सताता था, न कोई चोरी करता था और न कोई पर-स्त्रियोंका अपहरण करता था। वहाँकी प्रजा धर्म, अर्थ और कामका समानरूपसे पालन करती थी।

एक दिन महाराज पद्मसेन राज-सभामें बैठे हुए थे, उसी समय 'वन' नामक मालीने आकर अनेक फल-फूल भेंट करते हुए कहा कि 'महाराज! प्रीतिङ्कर वनमें सर्वगुप्त केवलीका शुभागमन हुआ है।' राजा पद्मसेन केवलीका आगमन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए। उनके समस्त शरीरमें भारी हर्षका रोमांच हुआ और आँखोंसे हर्षके आँसू बहने लगे। उसी समय उन्होंने सिंहासनसे उठकर जिस ओर परमज्ञानी सर्वगुप्त केवली विराजमान थे, उस ओर सात कदम चलकर उन्हें परोक्ष नमस्कार किया।

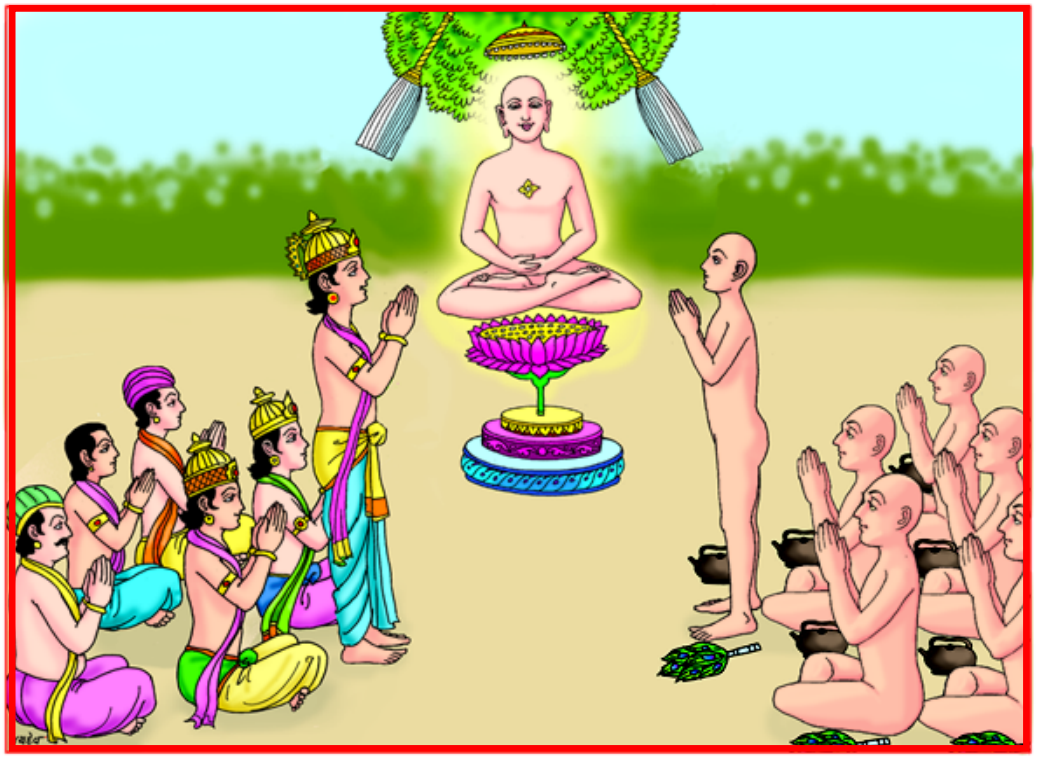

सर्वगुप्त केवलीके समीप वंदन करते राजा पद्मसेन (भगवानकी वाणीमें आया कि यह पद्मसेन महाराजा भावीमें जम्बूद्वीपके १३वें तीर्थंकर विमलनाथ होंगे)

फिर समस्त परिवार और नगरके प्रतिष्ठित लोगोंके साथ उनकी वन्दनाके लिये प्रीतिङ्कर वनमें गये। सर्वगुप्त केवलीके प्रभावसे उस वनकी अपूर्व शोभा हो गई थी। उसमें एक साथ छहों ऋतुएँ अपनी-अपनी शोभा प्रगट कर रही थीं। महाराज पद्मसेनने विनतमूर्धा होकर केवलीके चरणोंमें प्रणाम किया और उपदेश सुननेकी इच्छासे वहीं यथोचित स्थान पर बैठ गये।

केवली भगवानने दिव्य-ध्वनिके द्वारा सात तत्त्वोंका व्याख्यान किया और चतुर्गतिरूप संसारके दुःखोंका वर्णन किया। संसारका दुःखमय वर्णन सुनकर महाराज पद्मसेनका हृदय एकदम भयभीत हो उठा। उसी समय उनके हृदयमें वैराग्य-सागरकी तरल तरंगे उठने लगीं। जब केवली भगवानकी दिव्यध्वनिमें आया कि राजा पद्मसेन

अपने तीर्थंकरत्वका तीर्थंकरतुल्य उत्सव मनाते महाराजा पद्मसेन

(विमलनाथ भगवानका जीव)के दो ही भव बाकी है और अंतिम भवमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ होकर मोक्ष जायेंगे, यह बात सुनकर वे अत्यन्त आनंदित हो गये। सभी आधीनस्थ राजाओंको बुलाया और ऐसा उत्सव मनाया कि ''मानों मैं तीर्थंकर हूँ''।

तत्पश्चात् घर आकर ''पद्म'' नामक पुत्रको राज्य दिया और फिर वनमें जाकर, उन्हीं सर्वगुप्त केवली भगवानके निकट जिनदीक्षा ले ली। उनके साथ रहकर उन्हींसे ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह-कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया, जिससे आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर बारहवें सहस्त्रार स्वर्गमें 'सहस्त्रार' नामके इन्द्र हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके पूर्वोत्तर भव

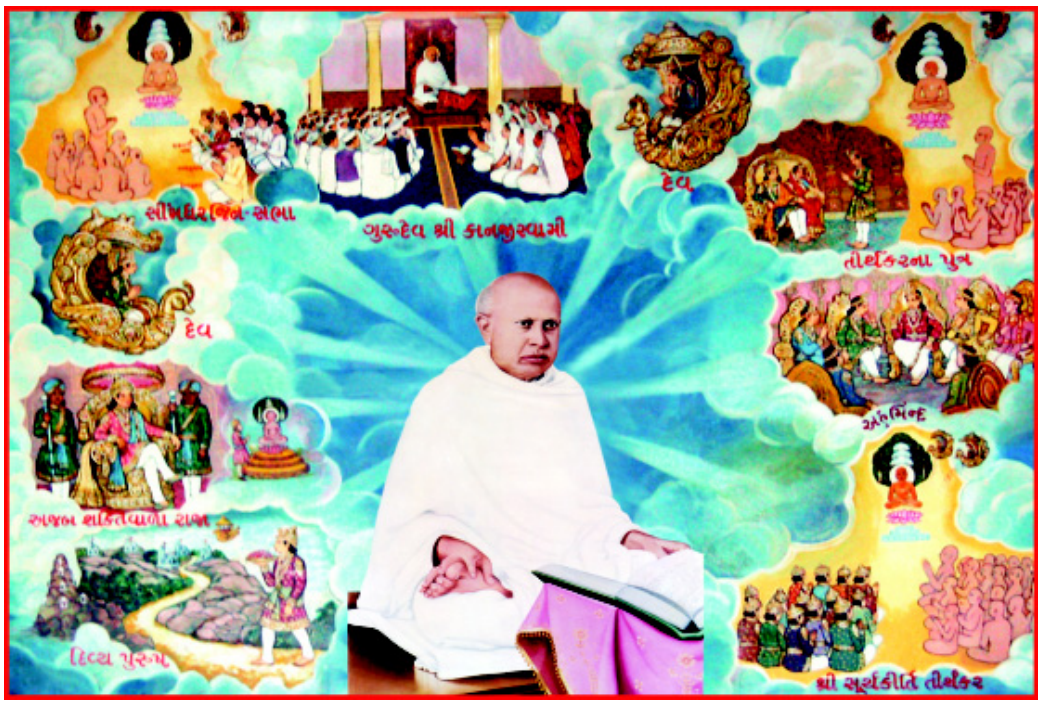

पूज्य बहिनश्रीको वि.सं. १९९३ (ई.स. १९३७) में जातिस्मृतिज्ञान हुआ था। पूज्य गुरुदेवश्रीको आते स्वप्न या ॐकार ध्वनिके नाद आदिकी कोई भी बात उन्हें ज्ञात नहीं थी। उन्हें प्रसिद्धिकी तनिक भी चाह न होनेसे इस जातिस्मृतिज्ञानसे वे बाहर पड़ना नहीं चाहती थी; अन्तरमें ही रखना चाहती थीं। उन्होंने यह बात अपने बड़े भाई या पिताजी तकको नहीं कही थी। फिर भी यह जातिस्मृतिज्ञान पूज्य गुरुदेवश्रीके पूर्वोत्तर भव संबंधित होनेसे उन्होंने उसे ७ मास १२ दिन पश्चात् मात्र पूज्य गुरुदेवश्रीको ही बताया था। पूज्य गुरुदेवश्रीको स्वयं आते स्वप्न, ॐ ध्वनिका नाद, ७२ करोड़ बाजे, समवसरण विभूति आदिकी बातोंसे बहिनश्रीका उक्त ज्ञान मेलवाला होनेसे उन्होंने इस ज्ञानको तुरंत स्वीकार कर लिया।

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं,
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं,

पूर्वभवमें श्री सीमंधर भगवानके पास सुना है. उसमेंसे स्मरण आता है कि ''यह राजकुमार (-पूज्य श्री कानजीस्वामीका जीव) भविष्यमें **धातकीखण्ड द्वीपके विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर** होंगे। उनका नाम श्री **सूर्यकीर्तिस्वामी** तथा श्री **सर्वांगस्वामी**–ऐसे दो प्रकारके नाम याद आते हैं अर्थात् दो प्रकारके नाम हों, ऐसा याद आता है। यह देवाभाई (बहिनश्री चंपाबहिनका जीव) भविष्यमें सूर्यकीर्ति तीर्थंकरके **देवेन्द्रकीर्ति** नामके गणधर होगें।''

भूतकालके भव

४. **दिव्य पुरुष :** यह राजकुमार (-पूज्य श्री कानजीस्वामीका जीव) कुछ भव पूर्व एक मनुष्यके भवमें थे। वहाँ उनकी दिव्य शक्ति थी। अतः वे **'दिव्यतावाले पुरुष'** थे।

३. **अजब शक्तिशाली राजा :** 'दिव्य पुरुष'के भवके बादका दूसरा भव भी मनुष्यपनेका था। वहाँ भी वे पुण्यशाली थे। सर्व कार्योंमें जीते ऐसी **'अजब उनकी शक्ति'** थी। एकबार वे उस भवमें केवली भगवानका उपदेश सुनने गये थे। उपदेश सुननेके बाद उन्होंनें मुनिभगवंतके दर्शन किये। वहाँ अन्तरमें भाव आते ही मुनिभगवंतसे अपने भवोंकी बात पूछी थी। मुनिभगवन्तने उन्हें भवोंकी बात कही थी, जिसमें भी आया था कि 'तुम भवांतरमें तीर्थंकर होंगे'–यह बात बराबर याद आती है।

२. **देव :** (अजब शक्तिशाली मनुष्यके पश्चात् कुछ भव बाद) **××× देवका भव** था।

१. **फतेहमंद राजकुमार :** देवके भव पश्चात् जम्बूद्वीपके महाविदेहक्षेत्रमें जन्में— ऐसा याद आता है। वहाँ वे **तेजस्वी फतेहमंद राजकुमार** थे। वे राजकुमार बार बार तीर्थंकर (-सीमंधर भगवान)का उपदेश सुनने आते थे। राजकुमारको अध्यात्मतत्त्वका बहुत रंग था। यह राजकुमार भविष्यमें अर्थात् कालक्रमसे तीर्थंकर होंगे। ऐसी वाणी वहाँ महाविदेहक्षेत्रमें पुरुषपने मैंने (बहिनश्रीके जीवने) श्री तीर्थंकर और श्री श्रुतकेवली दोनोंके पाससे सुनी थी। ऐसी सहज स्मृतिरूप वेदनकी ज्ञान पर्याय परिणमन कर रही है।

वर्तमान भव

१. **पूज्य गुरुदेवश्री :** महाविदेहक्षेत्रके यह फतेहमंद राजकुमार ही इस भवमें **पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी** हैं।

भविष्यके भव

१. **वैमानिक देव :** पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके भव पश्चात् यहाँसे पूज्य गुरुदेवश्री **वैमानिक देव** होंगे।

२. **तीर्थंकर पुत्र :** कोई क्षेत्रकी भूमि सुंदर और हरियाली होगी वहाँ कोई धर्मधुरंधर ऐसे **तीर्थंकर** राजाके घर (वैमानिक) देवगतिसे चयकर उनके **पुत्ररूपसे** उत्पन्न होगें (तीर्थंकर-पुत्रका भव)। (उन तीर्थंकर भगवानका नाम 'सुजय' या 'जय' होगा।) यहाँ इस भवमें वे तीर्थंकरप्रकृतिका बंध करेंगे।

३. **अहमिन्द्र :** वहाँ वे 'तीर्थंकर-पुत्र'के भवमें हूबहू मुनिपना पालकर देवलोकमें **'अहमिन्द्र'** होंगे।

४. **सूर्यकीर्ति तीर्थंकर :** अहमिन्द्रसे चयकर वे धातकीखंडके विदेहक्षेत्रमें **सूर्यकीर्ति नामके तीर्थंकर** (अपरनाम सर्वांगस्वामी) होंगे।

[इस भांति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके भव तदुपरांत पूर्वके चार व भविष्यके चार —इस तरह नौ भवका विस्तृत वर्णन 'बहिनश्रीके ज्ञानवैभव' शास्त्रमें प्रकाशित हो चुका है। विस्तृत जानकारीके लिये मुमुक्षुओंको चाहिये कि पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके भवान्तरकी बातें उस शास्त्रसे पढ़कर अपनी श्रद्धाको सुदृढ़ करें।]

श्री पद्मप्रभस्वामी पूर्व तीसरे भवमें

अपापापदमेयश्रीपादपद्म प्रभोऽर्दय।
पापमप्रतिमाभो मे पद्मप्रभ मतिप्रद॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे पद्म प्रभो! आपके चरणकमल पूर्वसंचित पापकर्मसे रहित हैं, आपत्तियोंसे शून्य है और अपरिमित लक्ष्मीके–शोभाके-आधार हैं। तथा आप स्वयं भी अनुपम आभासे--तेजसे सहित है। हे सम्यग्ज्ञानके देनेवाले पद्मप्रभ जिनेन्द्र! मेरे भी पापकर्म नष्ट कीजिये।

भगवान पद्मप्रभका पूर्व तीसरा भव धातकीखण्डमें

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदी के दाहिने किनारे पर एक वत्स नामका देश था। उसके सुसीमा नगरमें किसी समय अपराजित नामका राजा राज्य करता था। वास्तवमें राजाका जैसा नाम था, वैसा ही उसका बल था। वह कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं हुआ था। उसकी भुजाओंमें अप्रतिम बल था, जिससे उसके सामने रणक्षेत्रमें कोई खड़ा भी न हो पाता था। उसके पास जो विशाल सेना थी, वह केवल प्रदर्शनके लिये ही थी; क्योंकि शत्रु लोग उनके अदम्य प्रतापके कारण दूरसे

पिहिताश्रव जिनेन्द्रके चरणोंमें महाराजा अपराजितका दीक्षाग्रहण व तीर्थंकर प्रकृतिका बंध

ही भाग जाते थे। उनके पुण्यसे, मेघ किसानोंकी इच्छानुसार बरसते थे और वर्षके आदि मध्य व अंतमें बोये जानेवाले सभी धान्य फल प्रदान करते थे। वह हमेशा अपनी प्रजाकी भलाईमें संलग्न रहते थे। राजा अपराजितने दान दे-दे कर दरिद्रोंको धनी बना दिया था। उनकी स्त्रियाँ अपने अनुपम रूप–सौन्दर्यसे सुर-सुन्दरियोंको भी पराजित करनेवाली थीं। उन सबके साथ सांसारिक सुख भोगते हुए वे दीर्घकाल तक पृथ्वीका पालन करते रहे।

एक दिन किसी कारणसे उनका चित्त विषय-वासनाओंसे विरक्त हो गया; इसलिये वह अपने पुत्र सुमित्रको राज्य देकर वनमें जा कर पिहितास्रव जिनेन्द्रके पास दीक्षित हो गए। वहीं खूब अध्ययन किया और कठिन तपस्याओंसे अपनी आत्माको बहुत कुछ निर्मल बना लिया। वहीं उन्होंने दर्शन-विशुद्धि, विनय-संपन्नता आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य-प्रकृतिका बन्ध कर लिया। जब उनकी आयु समाप्त होने को आई, तब वे समस्त बाह्य पदार्थोंसे मोह हटाकर शुद्ध आत्माके ध्यानमें लीन हो गये; जिससे समाधि-मरण करके वे नववें ग्रैवेयकके 'प्रीतिकर' विमानमें ऋद्धिधारी अहमिन्द्र हुए।

मुनिराज अपराजित द्वारा तपके प्रभावसे प्राप्त 'अहमिद्ध' पद

श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र पूर्व तीसरे भवमें

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमते र्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे महामुने अनंतनाथ भगवन्! आप ऐसे हो, वैसे हो—ऐसा मुझ अल्पमतिका यह प्रलाप, जब कि वह आपके समस्त माहात्म्यको प्रकट नहीं कर रहा है, तब भी आप सुधा-सागरके स्पर्शके समान कल्याण के लिये ही हैं अर्थात् कल्याणकी प्राप्तिके कारण हैं।

भगवान अनंतनाथ तीर्थंकरका पूर्व तीसरा भव धातकीखण्डमें

धातकीखण्ड द्वीपमें पूर्व मेरुकी उत्तरदिशामें एक अरिष्टा नामका नगर है, जो अपनी शोभासे पृथ्वीका स्वर्ग कहलाता है। उसमें किसी समय पद्मरथ नामक राजा राज्य करते थे। उनकी प्रजा पूर्णतः उनसे संतुष्ट रहती थी। वे भी प्रजाकी भलाईके लिये कोई बात उठा नहीं रखते थे। एक दिन वे स्वयंप्रभ तीर्थंकरकी वन्दनाके लिये

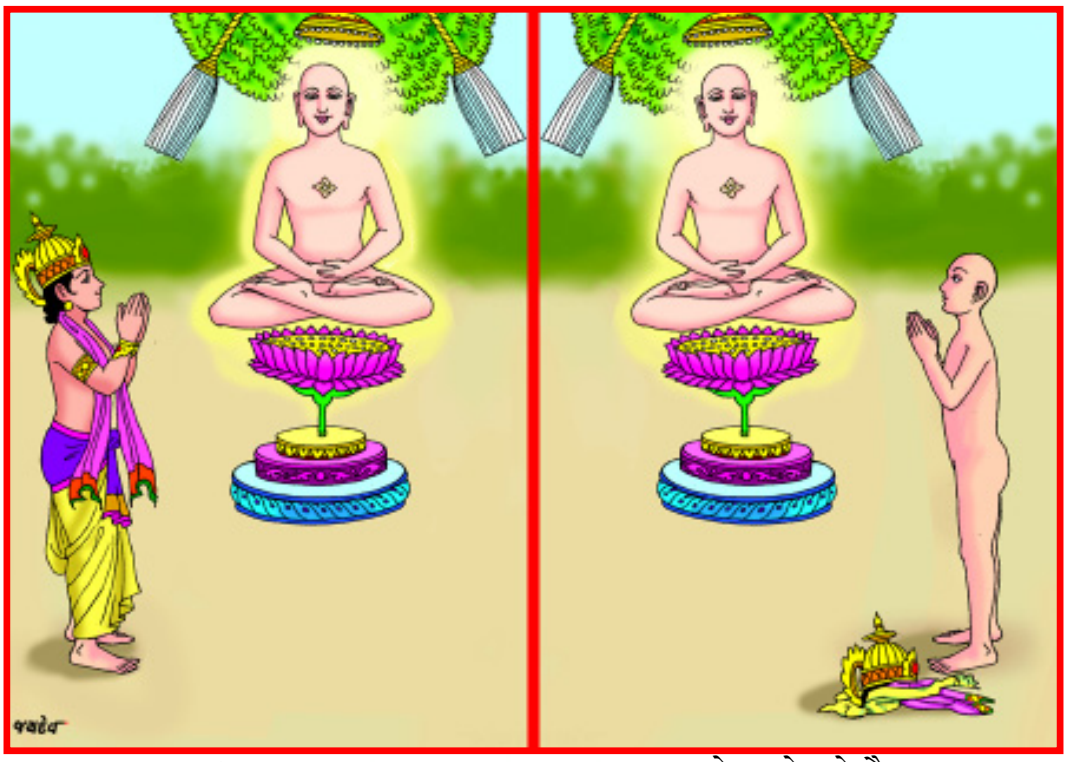

स्वयंप्रभ तीर्थंकरकी वंदना करते राजा पद्मरथ

भगवानके उपदेशसे वैराग्यप्राप्त पद्मरथ राजाकी भगवती दीक्षा

गये। वहाँ पर उन्होंने भक्तिपूर्वक स्तुति की और समीचीन-धर्मका व्याख्यान सुना। व्याख्यान सुननेके बाद वे सोचने लगे कि सब इन्द्रियोंके विषय क्षणभंगुर हैं। धन धूलिके समान है, यौवन पहाड़ीकी नदीके समान है, आयु जलके बुलबुलोंकी तरह चपल है और भोग सर्पके फणके समान भयोत्पादक है। मैं व्यर्थ ही राज-कार्यमें उलझा हुआ हूँ, ऐसा विचार कर उन्होंने अपने पुत्र 'धनमित्र'को राज्य देकर, उन्हीं तीर्थंकरके पास दिगम्बर दीक्षा ले ली। उन्हींके पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया और दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया।

वे आयुके अन्तमें सन्यासपूर्वक मरकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमानमें देव हुए।

श्री शान्तिनाथ तीर्थंकरका पूर्व पाँचवाँ व तीसरा भव

स्वदोषशान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणंगतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान शरण्यः॥

–स्वामी समन्तभद्रदेव

अर्थ :–'अपने राग-द्वेष आदि दोषोंके दूर करनेसे शान्तिको धारण करनेवाले, शरणमें आये हुए प्राणियोंको शान्तिके विधाता और जो कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेवाले है, शरणागतोंकी रक्षा करनेमें सक्षम भगवान श्री शान्तिनाथ हमारे संसार सम्बन्धी क्लेश और भयोंकी शान्तिके लिये अवतीर्ण हों। वे हमारे सांसारिक दुःख नष्ट करें।'

श्री शान्तिनाथ प्रभु पूर्व पांचवें भवमें जम्बूद्वीप–पूर्व विदेहक्षेत्रमें श्री क्षेमंकर तीर्थंकरके पुत्र वज्रायुध चक्रवर्ती थे। इन्द्रसभामें उनके ज्ञानकी प्रशंसा सुन एक देव (सौत्रान्तिक मतरूप) एकान्तवादी पण्डितका रूप धारण कर परीक्षा करने आया। वज्रायुध

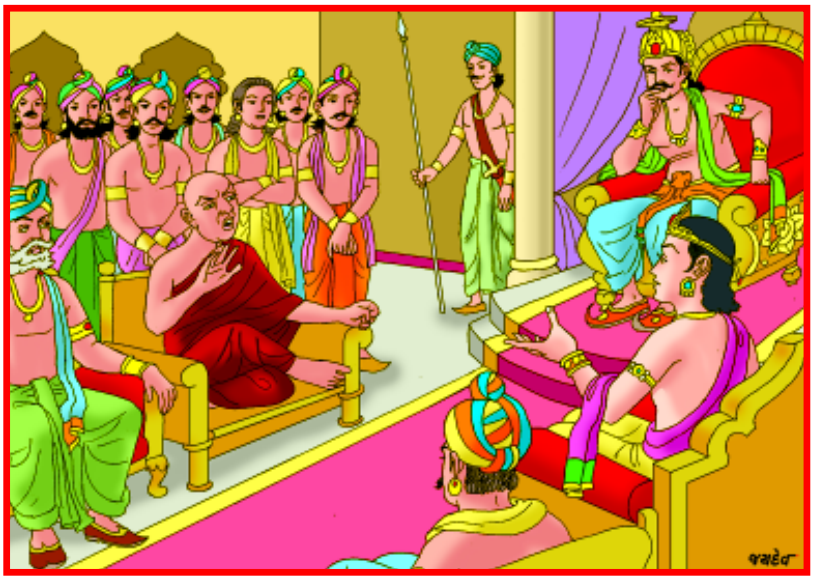

एकान्तवादीसे धर्मचर्चा करते शान्तिनाथ भगवानका जीव पूर्व पाँचवें भवमें

द्वारा अनेकान्तात्मक सम्यक् उत्तरोंसे आश्चर्यचकित हो वह देव वज्रायुधकी स्तुति करता है। (विस्तृत कथा हेतु देखें 'जैन पौराणिक लघुकथा भाग-४, पृष्ठ १७ से ३०)

वे ही शान्तिनाथ भगवान पूर्व तीसरे भवमें जम्बूद्वीप-पूर्वविदेहक्षेत्रमें श्री घनरथ तीर्थंकरके पुत्र मेघरथ राजकुमार थे। वे प्रौषधोपवास करके वनमें मेरुसमान अड़ग हो

शीलव्रतमें अड़िग रहते शान्तिनाथ भगवानका जीव पूर्व तीसरे भवमें

ध्यान करते थे। तब इन्द्रसभामें उनके शीलकी प्रशंसा सुनकर दो देवियाँ परीक्षा करने आईं और उनकी अड़िगता देख आश्चर्यचकित हो उन्हें नमस्कार करती हैं।

(विस्तृत कथा हेतु देखें 'जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४, पृ. १७ से ३०)

भगवान श्री महावीरस्वामीका केवलज्ञान कल्याणक

कीर्त्या भुवि भासि तथा वीर! त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया।।

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे वीर! हे वर्धमान जिनेन्द्र! आप पृथ्वी पर आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणोंसे उत्पन्न सुशोभित–उज्ज्वल, उस ख्यातिसे नक्षत्रोंकी सभामें आसित-स्थित, एवं कुन्दकुसुमकी शोभाके समान सफेद कान्तिसे आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित होते हैं।

दीक्षा पश्चात् श्री महावीरस्वामी यद्यपि छः मास पर्यंत अनशन तप करनेमें पूर्ण योग्य थे, तथापि अन्य मुनीश्वरोंको चर्या-मार्गकी प्रवृत्ति दिखानेकी इच्छासे उन्होंने 'पारणा' कर लेनेका निश्चय किया। यह पारणा (उपवासके बादका आहार) शरीरकी स्थितिको शक्ति प्रदान करता है। महावीर प्रभु ईर्यापथकी शुद्धिको ध्यानमें रखकर विचारने लगे—'आहार-दान देनेवाला निर्धन है या धनवान? उसका दिया हुआ आहार-दान पवित्र है अथवा अपवित्र? इस प्रकार वे अपने चित्तमें वैराग्यका चिन्तवन करते हुए स्वयं विशुद्ध आहारकी खोजमें घूमने लगे। वे न तो मन्दगतिसे चलते थे एवं न एकदम तीव्रगतिसे ही।

साधारण-सी चाल से पैरोंको बढ़ाते हुए उन्होंने 'कूल' नामके एक सुंदर नगरमें प्रवेश किया। उस नगरका राजा 'कूल' अत्यन्त परिश्रमके बाद प्राप्त हुए, प्रिय धन-कोष (खजाना)की तरह अनायास ही आये हुए जिनदेव जैसे उत्तम पात्रको देखकर परम प्रसन्न हुआ। 'कूल' राजाने महावीरस्वामीकी तीन प्रदक्षिणा दी एवं भूमि पर पाँचों

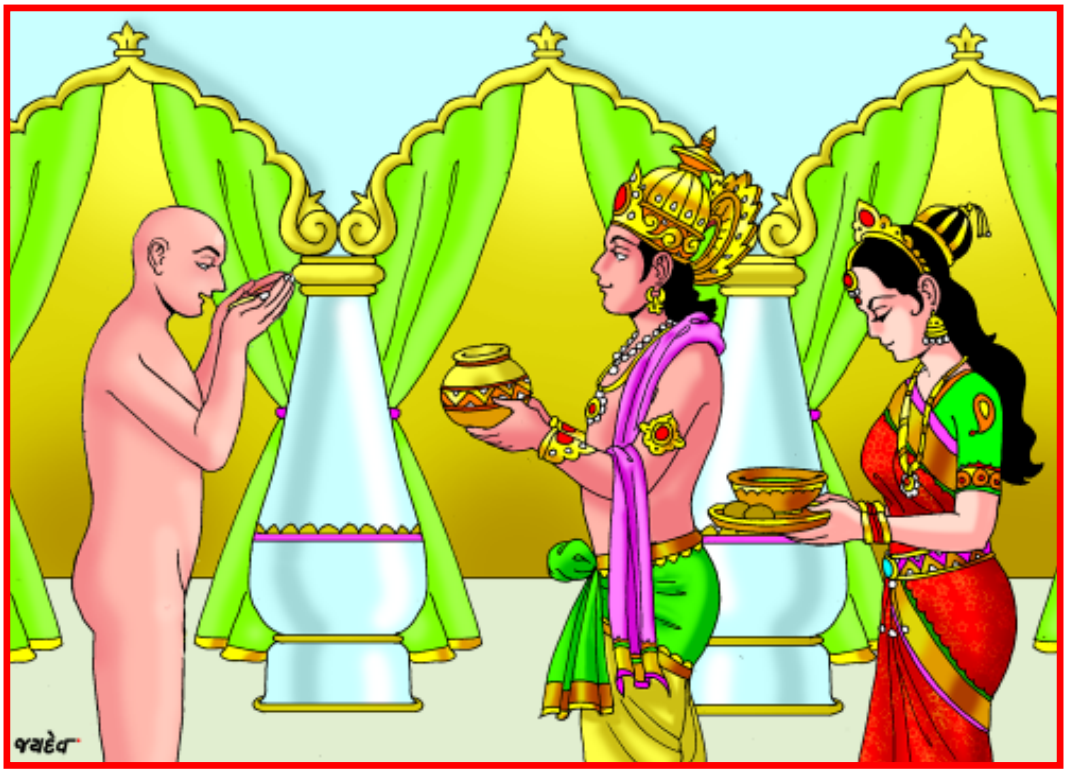

'कूल' राजा द्वारा मुनिराज महावीरको आहारदान

अङ्गोंको फैलाकर प्रणाम किया। बादमें आनन्दोल्लासके कारण 'तिष्ठ-तिष्ठ' (ठहरिये ठहरिये) ऐसा कहा। धर्म-बुद्धि राजाने प्रभुको एक पवित्र ऊँचे स्थान पर बैठाया एवं उनके कमल जैसे सुन्दर एवं कोमल चरणोंको पवित्र जलसे धोया। प्रभुके पाद-प्रक्षालित जलको राजाने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें लगाया। इसके बाद राजाने जलादि आठ प्रकारके प्रासुक द्रव्योंसे प्रभुकी भक्तिपूर्वक पूजा की। राजाने अपने मनमें विचारा कि आज घरमें सुपात्र उत्तम अतिथिके आ जानेसे मेरा गृहस्थ-जीवन सफल हुआ। मैं पुण्यकर्मा हूँ। इस पवित्र विवेकसे राजाका मन अत्यधिक विशेष पवित्र हो गया। 'हे देव! हे प्रभो! आज आपके आगमनसे मैं धन्य हो गया, आपने मेरे घरको परम पवित्र बना दिया'– ऐसा कहनेसे राजा का वचन पवित्र हो गया। 'पात्रदान करनेसे मेरा हाथ एवं शरीर पवित्र हो गया'—ऐसा सोचनेसे राजाकी काय-शुद्धि हो गयी। उसने कृत आदि दोषोंसे हीन प्रासुक अन्नसे होनेवाले विमल आहार-दानसे 'एषणा'को शुद्ध किया। इस प्रकार उन 'कूल' राजा ने नवधा-भक्तिपूर्वक महान पुण्यका उपार्जन किया।

इसके बाद राजाने हितकारक उत्तम पात्रको मनसा-वाचा-कर्मणासे पवित्र होकर श्रद्धा-भक्तिके साथ विधिपूर्वक खीरका आहारदान दिया। वह विशुद्ध आहार प्रासुक एवं स्वादिष्ट था, निर्मल तप को बढ़ानेवाला था एवं क्षुधा-पिपासाको शान्त करनेवाला था। राजाके दानसे देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए एवं पुण्योदयके कारण राजप्रसादके आंगनमें रत्नोंकी अविरल वर्षा हुई। उन रत्नोंके साथ पुष्प-वृष्टि एवं जल-वृष्टि भी हुई। उसी समय आकाश-मण्डलमें 'दुन्दुभि' इत्यादि वाद्योंकी गम्भीर, तुमुल-ध्वनि हुई। उन वाद्योंके मधुर स्वरोंको सुननेसे ऐसा जान पड़ता था; मानो वे राजाके पुण्य एवं उत्तम यशका गम्भीर स्वरमें गान कर रहे हों।

आहारदानके समय वीतरागी श्री महावीर तीर्थंकरने अपने शरीरकी स्थितिके विचारसे अञ्जलिरूपी पात्रके द्वारा खीरको ग्रहण किया तथा इस आहार-ग्रहणके उत्तम फल से राजाको अनुगृहीत किया, एवं उसके घरको पवित्र कर पुनः वनको चले गये। राजाने भी अपने जन्म-गृह एवं धनको अप्रत्याशित पुण्य-प्रभावसे प्राप्त समझा एवं वे अपना अहोभाग्य समझने लगे। इस श्रेष्ठ दानका मन-वचन-काय द्वारा अनुमोदन करनेके कारण अर्थात् दाता एवं पात्रकी प्रशंसा करके बहुतसे लोगोंने दाताके समान ही उत्तम पुण्यका उपार्जन कर लिया।

जिनेश्वर श्री महावीर प्रभु नाना देशके अनेक नगर, ग्राम एवं वन-उपवनोंमें वायुकी तरह स्वच्छ गतिसे विचरने लगे। वे ममता-मोहसे रहित थे एवं योग-ध्यानादिकी सिद्धिके लिये सिंहके समान निर्भय होकर रात्रिके समयमें भी पर्वतकी अन्धेरी गुफामें, श्मशानमें एवं एकदम भयङ्कर निर्जन वनमें रहते थे। क्रमशः छठे एवं आठवें उपवाससे आरंभ कर वे छः मास तकके अनशन तपको करते थे। किसी पारणाके दिन तो वे अवमौदर्य तप एवं किसी पारणाके दिन लाभान्तरकी इच्छासे पापोंको दूर करनेके लिये 'चतुष्पक्षादि'की प्रतिज्ञा करके व्रत-परिसंख्यान तप करते थे।

इस प्रकारके परमोज्वल चारित्रयुक्त महावीर प्रभु सम्पूर्ण पृथ्वी पर विहार करते हुए उज्जयिनी नामकी एक महानगरीके 'अतिमुक्त' नामक श्मशानमें जा पहुँचे। उस महा भयानक श्मशानमें पहुँच कर महावीर प्रभुने मोक्ष प्राप्तिके लिये शरीरका ममत्व छोड़कर 'प्रतिमायोग' धारण कर लिया तथा पर्वतके समान अचल भावसे अवस्थित हो

गये। सुमेरु पर्वतके उन्नत श्रृंङ्गके समान एवं परमात्माके ध्यानमें लीन श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभुको देखकर उनके धैर्यकी परीक्षा करनेके लिये वहाँके स्थाणु नामक अन्तिम रुद्र (महादेव)को उपसर्ग करनेकी इच्छा हुई। इसी समय पूर्वकृत कुछ पापोंका भी उदय जिनेन्द्रदेवको होनेवाला था।

स्थाणुरुद्र द्वारा मुनिराज महावीर पर किये गये अनेक उपसर्ग

वह स्थाणु रुद्र अनेक भयंकर तथा नाम-कृति स्थूलकाय पिशाचोंको अपने सङ्ग लेकर महावीर स्वामीके ध्यानको भङ्ग करनेके लिये प्रस्तुत हुआ। रात्रिके समयमें स्थाणु रुद्र अपने बड़े-बड़े रक्तवर्ण नेत्रोंको फाड़-फाड़कर देखते हुए जिनेन्द्रप्रभुके सन्मुख आया, उस समय वह किलकारियाँ मार रहा था, नुकीले भयानक दाँतोंको दिखा-दिखाकर

अट्टहास कर रहा था, भगवानका ध्यान भङ्ग करनेके लिये प्रचण्ड ताल, स्वर एवं लयमें गा–बजाकर नाच रहा था; साथ ही विशाल मुख-विवरको फाड़े हुए तथा हाथोंमें तीक्ष्ण आयुधोंको धारण किये हुए था। इस प्रकारके महा भयोत्पादक स्वरूपको लेकर वह महावीरस्वामीके सन्मुख आया तथा उनके ध्यानको भङ्ग करनेके लिये उन पर बड़ा भारी उपसर्ग किया। परन्तु इन उपद्रवोंका महावीर प्रभु पर किसी प्रकारका प्रभाव नहीं पड़ा तथा उनका ध्यान यथापूर्व अचल एवं अटूट बना रहा। जब इतना करने पर भी वह जिनेन्द्रदेवके ध्यानको भङ्ग नहीं कर सका, तब उसने दूसरे उपायोंका अवलम्बन लिया। स्थाणुरुद्रने सर्प, सिंह, हाथी, प्रबल वायु तथा अग्नि इत्यादिके रूपमें आकर तथा उत्पीड़क वचनोंके द्वारा उग्र उपसर्गोंका आरंभ किया। इन उपसर्गोंसे निर्बल-हृदयोंमें तो भयका सञ्चार हो सकता था, किन्तु महावीर भगवानके हृदयमें डर कहाँ? वे तो बराबर अचल ही बने रहे। उनका ध्यान भंग होना तो दूर रहा, उत्तरोत्तर ध्यानकी गंभीरता बढ़ती ही गयी। जब स्थाणुरुद्रको इतने पर भी सफलता नहीं मिली, तब वह अन्य प्रकारके घोर उपसर्गोंको करने लगा। भीलोंका रूप धारण कर भयानक शस्त्रास्त्रोंको दिखा प्रभुके हृदयमें भय उत्पन्न कराना चाहा, परन्तु इन अनेक उग्र उपद्रवोंसे प्रपीड़ित होते रहने पर भी जगत्स्वामी जिनेन्द्र महावीर प्रभु रञ्चमात्र चलायमान नहीं हुए एवं पर्वतके समान एकदम अचल बने रहे; किंचित् मात्र भी खिन्नताका आभास उनकी मुखाकृतिसे नहीं मिला। आचार्यने कहा है : कि सम्भव है कि अचल पर्वत भी चलायमान हो जाय, परंतु श्रेष्ठ योगियोंका चित्त हजारों उपद्रवके द्वारा भी कदापि चलायमान नहीं हो सकता। इस संसारमें वे ही लोग धन्य हैं, जो कि ध्यानमग्न हो जाने पर अनेक उपद्रवोंके होते रहने पर भी मनमें विकारयुक्त होकर ध्यान भङ्ग कदापि नहीं होने देते।

इसके बाद जब जिनेन्द्रदेव महावीरस्वामीके ध्यानको भंग करनेमें स्थाणु रुद्रको कुछ भी सफलता प्राप्त करनेकी आशा नहीं रही, तब हताश एवं लज्जित होकर वह वहीं उनकी स्तुति करने लगा—'हे देव! इस संसारमें आप ही बली हो, आप ही जगद्गुरु हो एवं वीर-शिरोमणि हो, इसलिये आपका नाम 'महावीर' है। आप महा ध्यानी हो, सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हो, सकल परिषहोंके विजेता हो, वायुके समान

निःसंग वीर हो एवं कुलाचलकी तरह अचल हो। आप क्षमामें पृथ्वीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके समान एवं प्रसन्नचित्त होनेके कारण निर्मल जलके समान हो। कर्मरूपी जङ्गलको नष्ट करनेके लिये आप अग्नि-अंगारके समान हैं। हे प्रभो! आप त्रिलोकमें वृद्धिगत् हो एवं बुद्धिशाली होनेके कारण 'सन्मति' हो। आप ही महाबली तथा परमात्मा हो। हे नाथ! आप निश्चलरूपके धारण करनेवाले हैं एवं प्रतिमा-योगके धारण करनेवाले हैं। आप परमात्मा–स्वरूप हैं, आपको सदैव नमस्कार है।' इस प्रकार स्थाणुरुद्रने महावीरप्रभुकी स्तुति करके नमस्कार किया तथा भगवानके प्रति ईर्ष्या छोड़कर अपनी प्रिय पार्वतीके साथ आनन्दित होकर अपने स्थानको चला गया। जब महापुरुषोंके योगजन्य साहस तथा शक्तिको देखकर दुर्जन भी परम आनन्दित हो जाते हैं, तब सत्पुरुषोंका तो कहना ही क्या? सज्जनोंका तो दूसरोंके गुणों पर मुग्ध हो जानेका स्वभाव ही होता है।

इसप्रकार ध्यानाग्निसे अलंकृत वे मुनिराज एक दिन जाम्भृक ग्राममें ऋजुकुला नदीके किनारे 'मनोहर' वनमें साल वृक्षके नीचे महारत्नशिलापट पर दो दिनका उपवास कर आरूढ़ हुए वैशाख शुक्ला दशमीके दिन कर्मरूपी शत्रुओंकी अनेक सन्ततियोंको नष्ट कर श्री महावीरप्रभु दसवें गुणस्थान पर आरूढ़ हुये एवं वहाँ शुक्ल-ध्यानके प्रभावसे संज्वलन लोभको नष्ट कर क्षीणकषायी हो गये। वे सेना सहित मोह-कर्मरूपी राजाको नष्ट कर शूर-शिरोमणिके समान शोभायमान हुये। बादमें वे बारहवें गुणस्थानको प्राप्त हुये एवं वहाँ केवलज्ञानके उत्तम राज्यका अधिकार प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील हुये। महावीर प्रभुने बारहवें गुणस्थानके अन्तिम दो समयोंमेंसे पूर्व समयमें निद्रा एवं प्रचला—इन दोनों कर्मोंका नाश किया। इस कार्यमें उन्हें शुक्ल-ध्यानके दूसरे भागसे सहायता मिली। इसके बाद फिर जगद्गुरु महावीरस्वामीने शुक्ल-ध्यानके दूसरे हिस्सेसे पाँच ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म एवं पाँच अन्तराय कर्मोंका नाश कर दिया। जिस तरह कि तीक्ष्ण बाणसे कपड़ेके कई तहोंको छेद दिया जाता है, उसी तरह प्रभुने कर्मोंका नाश किया। वे बारहवें गुणस्थानके अन्तमें तिरेसठ प्रकृतियोंका नाश करके तेरहवें गुणस्थानको प्राप्त हुये एवं उसी स्थानसे उन्होंने अति उत्तम केवलज्ञानको प्राप्त किया, जो अनन्त है, लोक-अलोकके स्वरूपका प्रकाशक है, अपरिमेय महिमाशाली है एवं अक्षय मोक्ष-राज्यको देनेवाला है।

भगवान महावीर समवसरणमें

जिनेन्द्रदेव श्री महावीर प्रभुने वैशाख शुक्ला दशमीके दिन सायंकालके समय हस्त एवं उत्तरा-नक्षत्रके मध्यमें शुभ चन्द्र योग होने पर, मोक्षप्रदाता क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात संयम (चारित्र), अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक-दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं क्षायिक वीर्य—इन श्रेष्ठ नौ क्षायिक लब्धियोंको उपलब्ध किया। इस प्रकार जब महावीरस्वामीने घातिया-कर्मरूपी महा शत्रुओंको जीत लिया एवं केवलज्ञानरूपी अलभ्य सम्पत्तिको पा लिया तब आकाशसे देव लोग 'जय-जयकार' करने लगे एवं दुन्दुभी आदि नाना प्रकारके मनोहर वाद्य बजने लग गये। देवोंके अपार विमान-समूहसे सारा आकाश-मण्डल ढँक-सा गया। अतूट पुष्प-वर्षा होने लगी। इन्द्रके साथ सब देवोंने महावीरस्वामीको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। आठों दिशायें एवं आकाश एकदम निर्मल हो गये, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा बहने लगी। इन्द्रासन कंपित होने लगा। इसी समय कुबेर महावीर प्रभुके अनुपमेय गुणोंसे मुग्ध होकर भक्तिवश उनके समवसरणके उपयुक्त महा सम्पदाकी रचनामें प्रवृत्त हुआ। जिन महावीर प्रभुने घातिया–कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट करके अनन्त एवं अनुपम क्षायिक गुणोंको पा लिया है एवं सम्पूर्ण भव्य जीवोंको परम आनन्द प्रदान करते हुये केवलज्ञानरूपी उत्तम राज्यको स्वीकार किया है तथा जो भव्य जीवोंके मुकुटमणिके समान शोभायमान हैं, उन त्रैलोक्य-तारण-समर्थ महावीर प्रभुको मैं उनके उत्तम गुणोंकी प्राप्तिके लिये नमस्कार स्तुति करता हूँ।

तीर्थंकर जिनेन्द्रदेवके आठ प्रातिहार्य

जिनेन्द्र भगवंतके आठ प्रातिहार्य

(१) अशोकवृक्ष : ऋषभादि तीर्थंकरोंके समवसरणमें भगवान पर जो वृक्ष होता है, वह ही अशोकवृक्ष है।

(२) तीन छत्र : चन्द्रमण्डल सदृश्य और मुक्ता-समूहोंके प्रकाशसे संयुक्त तीन छत्र सब तीर्थंकरोंके (मस्तक पर) शोभायमान होते हैं।

(३) सिंहासन : निर्मल स्फटिक पाषाणसे निर्मित और उत्कृष्ट रत्नोंके समूहसे संचित उन तीर्थंकरोंका जो विशाल सिंहासन होता है, उसका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है?

(४) ॐ ध्वनि : ॐकार ऐसा नाद (भगवानकी वाणी)

(५) दुन्दुभिनाद : 'विषय–कषायोंमें आसक्त हे जीवों! मोहसे रहित होकर जिनेन्द्र प्रभुकी शरणमें आओ'–भव्य जीवोंको ऐसा कहनेके लिये मानों देवोंकी दुंदुभी बाजा गम्भीर शब्द करता है।

(६) पुष्पवृष्टि : झन-झन शब्द करते हुए भ्रमरोंसे व्याप्त एवम् उत्तम भक्तिसे युक्त देवों द्वारा छोड़ी हुई पुष्पवृष्टि भगवान जिनेन्द्रके चरणकमलोंमें गिरती है।

(७) प्रभामण्डल : सब लोगोंको दर्शनमात्रसे ही अपने-अपने सात (तीन पूर्वके भव, तीन भविष्यके भव और एक वर्तमान भव) भव देखनेमें निमित्त है और करोड़ों सूर्योंके सदृश्य उज्वल है, तीर्थंकरोंका ऐसा यह प्रभामण्डल जयवन्त है।

(८) चँवर : देवों द्वारा झुलाये (ढोरे) गये कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शंख, सहस्र प्रकारके सजाये ६४ चमरोंसे विद्यमान जिनेन्द्र भगवान जयवन्त होवें।

भगवान श्री आदिनाथके पूर्व दस भव

भगवान श्री आदिनाथका पूर्व दसवाँ भव

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले। समञ्जसज्ञान विभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः। क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे आदिनाथ भगवान! आप स्वयंभू थे–दूसरेके उपदेशके विना मोक्षमार्गको जानकर तथा उसरूप आचरण कर अनन्तचतुष्टयस्वरूप हुए थे, प्राणियोंके लिये हितकारक थे, सम्यग्ज्ञानकी विभूतिरूप नेत्रसे युक्त थे और स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्तिमें कारणभूत गुणोंके समूहसे युक्त वचनोंके द्वारा कर्मरूप अज्ञानको नष्ट करते हुए जो पृथ्वीतल पर अर्थ प्रकाशकत्व आदि गुणोंसे युक्त किरणोंके द्वारा अन्धकारको नष्ट करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित होते थे। इस भांति भगवान आप स्वयंभू नामको सार्थक करनेवाले थे।

बहुत वर्षों पूर्व राजा अतिबल जैसे वीर, पराक्रमी, यशस्वी, दयालु और नीति-निपुण राजा पृथ्वीतल पर अधिक नहीं थे। उनकी नीति-निपुणता और प्रजा-वत्सलता सब ओर प्रसिद्ध थी। वे कभी सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर शत्रुओंको सन्ताप पहुँचाते थे और कभी चन्द्रमाकी भाँति शान्त वृत्तिसे प्रजाका पालन करते थे। उनकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल रही थी। राजा अतिबलके व्यक्तित्वके सामने सभी विद्याधर नरेश अपना शीश झुका देते थे। वे समुद्रसे अधिक गम्भीर थे, मेरुसे अधिक स्थिर थे, बृहस्पतिसे अधिक विद्वान थे और सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी थे। महाराज अतिबलकी रानीका नाम 'मनोहरा' था। मनोहराका जैसा नाम था, वैसा ही उसका रूप भी था। उसके चरण कमलके समान सुन्दर थे और नाखून मोतियोंसे चमकते थे। जंघायें कामदेवकी तरकसके सदृश मालूम होती थी और स्थूल ऊरु केलेके स्तम्भसे भी भली थीं। उसका विस्तृत नितम्ब-स्थल बहुत ही मनोहर था। मनोहराकी गम्भीर नाभि, श्यामल रोम राजि और कृष कटि अपनी सानी नहीं रखती थीं। उसके दोनों

स्तन श्रृंगार-सुधासे भरे हुए सुवर्ण कलशकी नाई मालूम होते थे। भुजाएँ कमलिनीके समान मनोहर थी और हाथ कमलोंकी शोभाको भी जीतते थे। उसका कण्ठ शङ्ख-सा सुन्दर था। ओष्ठ प्रवालसे और दाँत मोती-से लगते थे। उसकी बोलीके सामने कोयल भी लजा जाती थी। मनोहराके मुखके सामने पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी मुंहकी खानी पड़ती थी। उसका सारा शरीर तप्त सुवर्णकी तरह चमकता था। कोई उसे एकाएक विद्याधरी कहनेका साहस नहीं कर पाता था। सचमुच वह मनोहरा अद्वितीय सुन्दरी थी। राजा अतिबल रानी मनोहराके साथ अनेक प्रकारके सुखमें समय बिताते थे। कुछ समय बाद मनोहराकी कुक्षिसे एक बालक उत्पन्न हुआ। बालकके जन्मकालमें अनेक शुभ शुकन हुये। राजा अतिबलने दीन दरिद्रोंके लिये किमिच्छक दान दिया और प्रजाने अनेक उत्सव मनाये। बालककी वीर चेष्टायें देखकर राजा अतिबलने उसका नाम **'महाबल'** रख दिया। बालक महाबल द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसकी अद्भुत लीलायें देख और मीठी बोली सुनकर माँका हृदय फूला न समाता था। उसकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इसलिये उसने अल्पवयमें ही समस्त विद्यायें सीख लीं। पुत्रकी चतुराई और नीति-निपुणता देखकर राजा अतिबलने उसे युवराज बना दिया और आप बहुत कुछ निश्चिन्त हो कर धर्म-ध्यान करने लगे।

एक दिन कारण पा कर महाराज अतिबलका हृदय संसारसे विरक्त हो गया। उन्हें पंच इन्द्रियोंके विषय क्षणभंगुर और दुःखदायी मालूम होने लगे। बारह भावनाओंका विचार कर उन्होंने जिन-दीक्षा धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर मन्त्री, सामन्त आदिके सामने अपने विचार प्रगट करके युवराज महाबलको राज्य तथा अनेक तरहके धार्मिक और नैतिक उपदेश देकर किसी निर्जन वनमें उन्होंने जिन-दीक्षा धारण कर ली। महाराज अतिबलके साथ अनेक विद्याधर राजाओंने भी जिन-

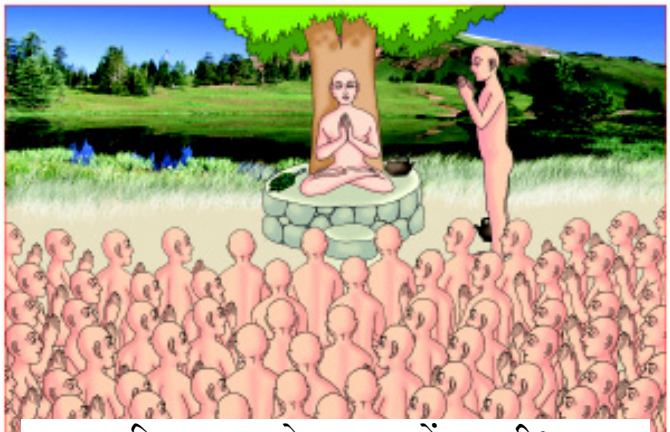
राजा अतिबलका अनेक राजाओं सह दीक्षाग्रहण

दीक्षा ली थी। उधर आत्मशुद्धिके लिये महाराज अतिबल कठिन तप करने लगे और इधर राजा महाबल भी नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

राजा महाबलकी शासन-प्रणालीसे समस्त प्रजा मुग्धचित्त थी। धीरे-धीरे राजा महाबलका यौवन विकसित होने लगा। उनके शरीरकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। उसका सुन्दर रूप देखकर स्त्रियोंका मन कामसे आकुल हो उठता था। निदान, मन्त्री आदिकी सलाहसे योग्य कुलीन विद्याधर कन्याओंके साथ उनका विवाह हो गया। अब राजा महाबल धर्म, अर्थ और कामका समानरूपसे सेवन करने लगे।

चार मंत्री सह
राजा महाबल

उनके महामति, सम्भिन्नमति, शतमति और स्वयंबुद्ध नामके चार मन्त्री थे। ये चारों मन्त्री राज्यकार्यमें बहुत ही चतुर थे। राजा महाबल जो भी कार्य करते थे, वह मन्त्रियोंकी सलाहसे ही करते थे, इसलिये उनके राज्यमें किसी प्रकारकी बाधायें नहीं आने पाती थी। ऊपर जिन चार मन्त्रियोंका कथन है, उनमें स्वयंबुद्धको छोड़कर बाकी तीन मन्त्री महा मिथ्यादृष्टि थे, इसलिये वे राजा महाबल तथा स्वयंबुद्धके साथ धार्मिक विषयोंमें विद्वेष रखा करते थे। पर राजा महाबलको राजनीतिमें उनसे कोई बाधा नहीं आती थी। स्वयंबुद्ध मन्त्री सच्चा जिन-भक्त था, वह निरन्तर राजा महाबलके हित चिन्तनमें लगा रहता था।

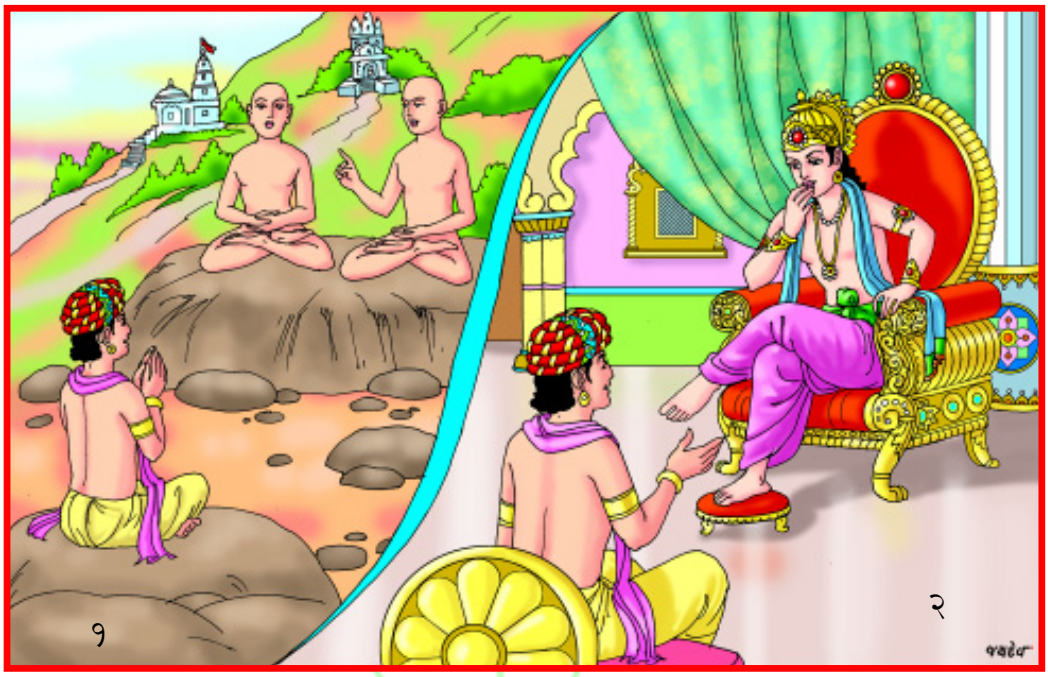

(१) मुनिराजसे अपने महाबल राजाकी भव्यताके बारेमें जानते स्वयंबुद्ध मंत्री
(२) राजा महाबलको मुनिराजसे सुनी बात बताता स्वयंबुद्ध मंत्री

महाबल राजाको उसका स्वयंबुद्ध नामक मंत्री धर्मोपदेश देता है। परन्तु उसकी असरके सम्बन्धमें उन्हें विश्वास नहीं आ रहा था। एक बार मेरु पर्वतके अकृत्रिम जिनबिम्बकी वंदना हेतु विदेहक्षेत्रसे आये दो चारणऋद्धिधारी मुनिवरोंको मंत्री पूछता है, कि—'मेरा राजा भव्य है या अभव्य?' उसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि 'तेरा राजा आजसे १०वें भवमें आदिनाथ (ऋषभदेव) तीर्थंकर होगा और वर्तमानमें उनका एक मासका आयुष्य बाकी है'—ऐसा उत्तर सुन मंत्री राजाको बात करता है, राजा व्रतधारी होता है।

मन्त्रीके कहनेसे राजा महाबलको दृढ़ निश्चय हो गया कि अब उसकी आयु केवल एक माह बाकी रह गई है। उस समय अष्टाह्निका व्रत था; इसलिये उन्होंने जिनमन्दिरमें आठ दिन तक खूब उत्सव किया और शेष बाईस दिनका संन्यास धारण किया। उन्हें संन्यास-विधि मन्त्री स्वयंबुद्ध बतलाते थे। अन्तमें पञ्च नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए राजा महाबल नश्वर शरीरका परित्याग कर ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें देवपर्यायके अधिकारी हुए।

विस्तृत कथाके लिये देखें जैन पौराणिक लघुकथा (भाग-१, पृ. ११ से २३)

भगवान श्री आदिनाथका पूर्व नौंवा भव

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषू। शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्वः पुनरद्भुतोदयो। ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे! आदिनाथ भगवान! आप तीनलोककी समस्त जनताके स्वामी थे। आपने कर्मभूमिके प्रारम्भमें मति, श्रुत और अवधिज्ञानके द्वारा लोगोंके कर्म तथा उनके फलोंको जानकर जीवित रहनेकी इच्छुक जनताको खेती आदि आजीविकाके उपयोगी छह कार्योंमें शिक्षित किया था और फिर हेय-उपादेय तत्त्वको अच्छी तरह जानकर इन्द्र आदिके द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूतिको प्राप्त होते हुए जो ममताभावसे–परिग्रह विषयक आसक्तिसे विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणोंसे आप श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे। अर्थात् आप गृहस्थ अवस्थामें होते हुए भी वैराग्यत्वको प्राप्त थे।

आदिनाथ भगवानका जीव पूर्व नौवें भवमें ललितांग देव

महाबल राजाका जीव ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें देव हुआ, वहाँ उनका नाम ललितांग था। जब ललितांगदेवने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व-भवका विचार किया, तब उसने स्वयंबुद्धका अत्यन्त उपकार माना और उसके प्रति अपने हृदयसे कृतज्ञता प्रकट की। पूर्व-भवके संस्कारसे उसने वहाँ पर भी स्वर्गके अकृत्रिम जिनालयोंके अत्यंत महिमा व अतिशय भक्ति सहित जिन-पूजा आदि धार्मिक कार्योंमें प्रमाद नहीं किया था। इस प्रकार ऐशान स्वर्गमें कनकप्रभा, विद्युल्लता

आदि चार हजार देवियोंके साथ अनेक प्रकारके सुख भोगते हुए ललितांग देवका समय बीतने लगा। ललितांग देवकी आयु अधिक थी, इसलिये उसके जीवनमें अल्प आयुवाली कितनी ही देवियाँ नष्ट हो जाती थी इस तरह सुख भोगते हुए ललितांग देवकी आयु जब केवल कुछ पल्योंकी शेष रह गई, तब उन्हें एक स्वयंप्रभा नामकी देवी प्राप्त हुई। ललितांगको स्वयंप्रभा-सी सुन्दरी देवी जीवनमें पहली बार मिली थी, इसलिये वे उसे बहुत चाहते थे और वह भी ललितांगको बहुत अधिक चाहती थी। दोनों एक दूसरे पर मोहित थे। परन्तु सब दिन किसीके एक से नहीं होते। धीरे-धीरे ललितांग देवकी दो सागर आयु समाप्त होनेको आई। जब उनकी आयु सिर्फ छः माहकी बाकी रह गई, तब उनके कण्ठमें पड़ी हुई माला मुरझा गई, कल्पवृक्ष कान्ति रहित हो गये और मणि-मुक्ता आदि सभी वस्तुएँ प्रायः निष्प्रभ-सी हो गई। यह सब देख उनने समझ लिया कि उनकी आयु अब छः माहकी शेष रह गई है। इसके बाद उसे अवश्य नरलोकमें उत्पन्न होना पड़ेगा। प्राणी जैसा कार्य करते हैं, वैसा ही फल पाते हैं। 'मैंने अपना समस्त जीवन भोग-विलासोंमें बीता दिया। अब शेष आयुमें मुझे धर्म-साधन करना परम आवश्यक है।' यह विचार कर पहिले ललितांग देवने स्वयंप्रभा देवी

अकृत्रिम जिनालयोंकी अतिशय भक्ति–वंदना करते ललितांग आदि देव

सह समस्त अकृत्रिम चैत्यालयोंकी अतिशय भक्ति सह वन्दना की; फिर अच्युत स्वर्गमें स्थित जिन प्रतिमाओंकी पूजा करते हुए समता-संतोषसे समय बिताने लगे। अन्तमें समाधिपूर्वक पञ्च-नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुए उन्होंने देव शरीरको छोड़ दिया।

भगवान श्री आदिनाथ स्वामीका पूर्व आठवाँ भव

विहाय यः सागरवारिवासस। वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान्। प्रभु प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः॥

—आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :—हे आदिनाथ भगवान ! आप मोक्षके अभिलाषी अथवा संसार समुद्रसे पार उतरनेके इच्छुक थे, जितेन्द्रिय थे, सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, परिषह आदिकी बाधाओंको सहन करनेवाले थे, इक्ष्वाकुकुल अथवा समस्त राजवंशोंमें आदि पुरुष थे, गृहीतव्रतसे अविचलित रहनेवाले थे, किसी अन्य राजाके द्वारा अमुक्त होनेसे पतिव्रता स्त्रीकी भाँति—समुद्रके जलरूप वस्त्रको धारण करनेवाली—समुद्रान्त धनधान्यसे परिपूर्ण पृथ्वीरूपी स्त्रीको छोड़कर दीक्षा धारण की थी।

जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती देश है। उसकी राजधानी उत्पलखेट नगरी है। उस समय वहां राजा वज्रबाहु राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम वसुंधरा था। राजा वज्रबाहु वसुन्धरा रानीके साथ इन्द्र-इन्द्राणीकी तरह भोग भोगते हुए आनन्दसे रहते थे। जिसका कथन अभी ऊपर (पृ.-४२) कर आये हैं, वही ललितांगदेव स्वर्गसे चयकर इन्हीं राजा वज्रबाहु और वसुन्धरा नामक राज-दम्पत्तिके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ। वज्रजंघ अपनी मनोरम चेष्टाओंसे सभीको हर्षित करता था। वह चन्द्रमाकी नांई मालूम होता था, क्योंकि चन्द्रमा जिस तरह कुमुदोंको विकसित करता है, उसी तरह वज्रजंघ भी अपने कुटुम्बी-कुमुदोंको विकसित (हर्षित) करता था। चन्द्रमा जिस तरह कलाओंसे शोभित होता है, उसी तरह वज्रजंघ भी अनेक कलाओं (चतुराईयों)से भूषित था। चन्द्रमा जिस प्रकार कमलोंको संकुचित करता है, उसी प्रकार वह शत्रुरूपी कमलोंको संकुचित (शोभाहीन) करता था और चन्द्रमा जिस तरह चाँदनीसे सुहावना जान पड़ता है, उसी तरह वज्रजंघ भी मन्द-हास्य-रूपी चाँदनीसे

सुहावना जान पड़ता था। ललितांगका मन स्वयंप्रभा देवीमें ही आसक्त था, इसलिये वह किसी दूसरी स्त्रीसे प्रेम नहीं करता था। युवावस्थाको प्राप्त होकर भी उसने अपना विवाह नहीं किया था। वह निरन्तर शास्त्रोंके अध्ययन तथा नये तथ्योंकी खोजमें लगा रहता था।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। राजा वज्रदन्त वहाँकी प्रजाका पालन करते थे। उनकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था। स्वयंप्रभा देवी स्वर्गसे चयकर इन्हीं राज-दम्पत्तिके ''श्रीमति'' नामकी पुत्री हुई। श्रीमतीकी सुन्दरता देखकर लोग कहा करते थे कि इसे ब्रह्माने चन्द्रमाकी कलाओंसे बनाया है। देवयोगसे राजा वज्रजंघ (पूर्वभवके ललितांग देवका जीव) और श्रीमतीका विवाह हो गया और वे बहुत आनंदसे राज्यके सुखको भोग रहे थे।

एक दिन चक्रवर्ती राजसभामें बैठे हुए थे कि मालीने उन्हें एक कमलका फूल अर्पित किया। उस कमलकी सुगन्धिसे चारों ओर भौंरे मंडरा रहे थे। ज्यों ही उन्होंने निमीलित कमलको विकसानेका प्रयत्न किया, त्योंही उस कमलमें रुके हुए एक मृत

माली द्वारा दिये गये कमलमें मरे हुए भौंरेको देख वैराग्यप्राप्त चक्रवर्ती वज्रदंत

भौंरे पर उनकी दृष्टि पड़ी। वह भौंरा सुगन्धिके लोभसे सायंकालके समय कमलके भीतर बैठा हुआ था कि अचानक सूर्य अस्त हो गया, जिससे वह उसीमें बन्द होकर मर गया था। उसे देखते ही चक्रवर्ती सोचने लगे कि 'जब यह भौंरा एक नासिका इन्द्रियके विषयमें आसक्त होकर मर गया है, तब जो मनुष्य रात-दिन पाँचों इन्द्रियोंके विषयमें आसक्त हो रहे हैं, वे भौंरेकी तरह मृत्युको न प्राप्त होंवेंगे? सच है—संसारमें इन्द्रियोंके विषय ही प्राणियोंको दुःखी किया करते हैं। मैंने जीवनभर विषय भोगे, पर कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ।' इत्यादि विचार कर उन्होंने जिन-दीक्षा धारण करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। चक्रवर्तीने अपने बड़े पुत्र अमिततेजको राज्य देना चाहा, पर जब उसने और उसके छोटे भाईने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया, तब उन्होंने अमिततेजके पुत्र पुण्डरिकको, जिसकी आयु उस समय छह माह की थी, राज्य दे दिया और स्वयं अनेक राजाओं, पुत्रों तथा पुरवासियोंके साथ दीक्षित हो गये।

चक्रवर्ती और अमिततेजके विरहसे साम्राज्ञी लक्ष्मीमती तथा अनुसुन्दरी आदिको बहुत दुःख हुआ। कहाँ चक्रवर्तीका विशाल राज्य और कहाँ छह माहका अबोध बालक पुण्डरीक! अब इस राज्यकी रक्षा किस तरह होगी? इत्यादि विचार कर लक्ष्मीमतीने दामाद राजा वज्रजंघको पत्र लिखा और उसे एक पिटारेमें बन्द कर चिन्तागति तथा मनोगति नामके विद्याधर दूतोंके द्वारा उनके पास भेज दिया। जब राजा वज्रजंघने पिटारा खोलकर उसमें रखे पत्रको पढ़ा, तब उन्हें बहुत दुःख हुआ। श्रीमतीके दुःखका तो पार ही नहीं रहा। वह पिता और भाईयोंका स्मरण कर विलाप करने लगी। पर राजा वज्रजंघ संसारकी परिस्थितिसे भलीभांति परिचित थे; इसलिये उन्होंने किसी तरह अपना शोक दूर कर श्रीमतीको धीरज बंधाया और 'मैं आता हूँ' कहकर उन विद्याधर दूतोंको वापिस भेज दिया। कुछ समय बाद राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने पुण्डरीकिणीकी ओर प्रस्थान किया। उनके साथ उनके महामन्त्री मतिवर, पुरोहित आनन्द, सेठ धनमित्र और सेनापति अकम्पन भी थे। इन सबके साथ हाथी, घोड़ा, रथ प्यादे आदिसे भरी विशाल सेना थी। चलते-चलते राजा वज्रजंघ किसी सुन्दर सरोवरके पास पहुँचे। चारों ओर सेनाको ठहरा कर स्वयं श्रीमतीके साथ अपने खेमें में चले गये। इतनेमें 'यदि वनमें आहार मिलेगा तो लेंगे, गाँव नगर आदिमें नहीं' ऐसी प्रतिज्ञा कर दो मुनिराज

राजा वज्रजंघ और श्रीमती द्वारा वनमें मुनिराजको आहारदान
सिंह, बंदर, सुअर, नेवले द्वारा आहारदानका भाव सह अनुमोदन

आकाशमें विहार करते हुए वहाँसे निकले। जब उन मुनियों पर राजा वज्रजंघकी दृष्टि पड़ी, तब उन्होंने भक्ति सहित पड़गाहा और श्रीमतीके साथ शुद्ध सरस आहार दिया। उस समय जंगलमें सिंह, सूअर, बन्दर, नेवला भी आहारदान बहुत भावसे देख रहे थे व अनुमोदन कर रहे थे।

जब आहार लेकर मुनिराज वनकी ओर विहार कर गये तब राजा वज्रजंघसे उनके पहरेदारने कहा कि महाराज! ये युगल मुनि आपके सबसे लघु पुत्र हैं। आत्मशुद्धिके लिये सदा वनमें ही रहते हैं। यहाँ तक की आहारके लिये नगरमें भी

जंगलमें मुनिराजसे अपने, अपने चार भिन्नों व आहारदानका अनुमोदन करनेवाले चार जीवका भवान्तर सुनते राजा वज्रजंघ व श्रीमती

नहीं जाते। यह सुनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमतीके शरीर हर्षसे रोमांचित हुआ। वे दोनों तत्क्षण उनसे प्रेम रखनेवाले चारों जीव सहित जिस ओर मुनिराज गये थे उसी ओर गये। आहारदानका अनुमोदन करनेवाले सिंह, सुअर, बंदर व नेवला भी वहीं पर थे।

निर्जन वनमें एक शिला पर बैठे हुए मुनि-युगलको देखकर राज-दम्पत्तिके हर्षका पार न रहा। राजा-रानीने भक्तिसे उनसे गृहस्थधर्मका व्याख्यान सुना। इसके बाद अपने और श्रीमतीके पूर्वभव सुनकर राजा वज्रजंघने पूछा—हे मुनिराज! ये मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन मुझसे बहुत प्यार करते हैं। मेरा भी इनमें अत्यधिक स्नेह है, इसका क्या कारण है? उत्तरमें मुनिराज बोले—'राजन्! अधिकतर पूर्व-भवके संस्कारोंसे ही प्राणियोंमें परस्पर स्नेह या द्वेष रहा करता है। आपका भी इनके साथ पूर्व-भवका सम्बन्ध है। तत्पश्चात् मुनिवरने सभीके पूर्वभव बताये और उनका उनसे भावि संबंध आदि भी विस्तारसे बताया।

आहारदानके फलमें वे राजा वज्रजंघ व श्रीमति भोगभूमिमें जन्म लेते हैं। साथमें उत्तम आहारदानका अनुमोदन करनेवाले सिंह, नेवला, सुअर व बन्दर भी अनुमोदनाके फलमें भोगभूमि पाते हैं। इस भाँति 'वज्रजंघ व श्रीमति', उनके चार मित्र व अनुमोदना करनेवाले चार जीव–दसों जीव आदिनाथ भगवानके भवमें साथमें रहते हैं।

(विस्तृत कथाके लिये देखें जैन पौराणिक लघुकथा भाग-४ पृष्ठ ८१)

श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व सातवाँ भव

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा।
निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा।
बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे आदिनाथ भगवान! आपने दीक्षा लेकर अपने काम क्रोध आदि समस्त दोषोंके मूल कारण–चार घातिया कर्मोंको परमशुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा निर्दयतापूर्वक भस्मभावको प्राप्त कराया है—समूल नष्ट कर दिया तथा आपने तत्त्वज्ञानके अभिलाषी प्राणीसमूहके लिये वास्तविक जीवादि तत्त्वोंका स्वरूप कहा और अन्तमें वे मोक्षस्थानके अविनाशी–अनन्त सुखके स्वामी हुए।

आदिनाथ व श्रेयांसकुमारके जीव पूर्व सातवें भवमें भोगभूमिमें थे। वज्रजंघ व श्रीमतिके भव (पूर्व आठवें भवमें) उन दोनोंने मुनिराजको आहारदान दिया व उसी समय सिंह, सूअर, बन्दर और नेवला आदि चारों तिर्यञ्चोंने उस (आहारदान)की अनुमोदना की थी, उसके फलस्वरूप वे छहों जीव भोगभूमिमें उपजे हैं।

एकबार आकाशमार्गसे दो चारण मुनिराजोंको आते देख वे आश्चर्यचकित होते हैं और उनके उपदेशसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। उन दोनों मुनिराजमें एक प्रीतिंकर मुनिराज हैं वे भगवान आदिनाथके पूर्व १०वें महाबलके भवमें उनके स्वयंबुद्ध मंत्री थे। भगवान आदिनाथके जीवको सम्यक्त्व प्राप्त हो इस हेतुसे यहाँ आये हैं। साथवाले दूसरे मुनिराज प्रीतिंकर मुनिराजके भाई हैं।

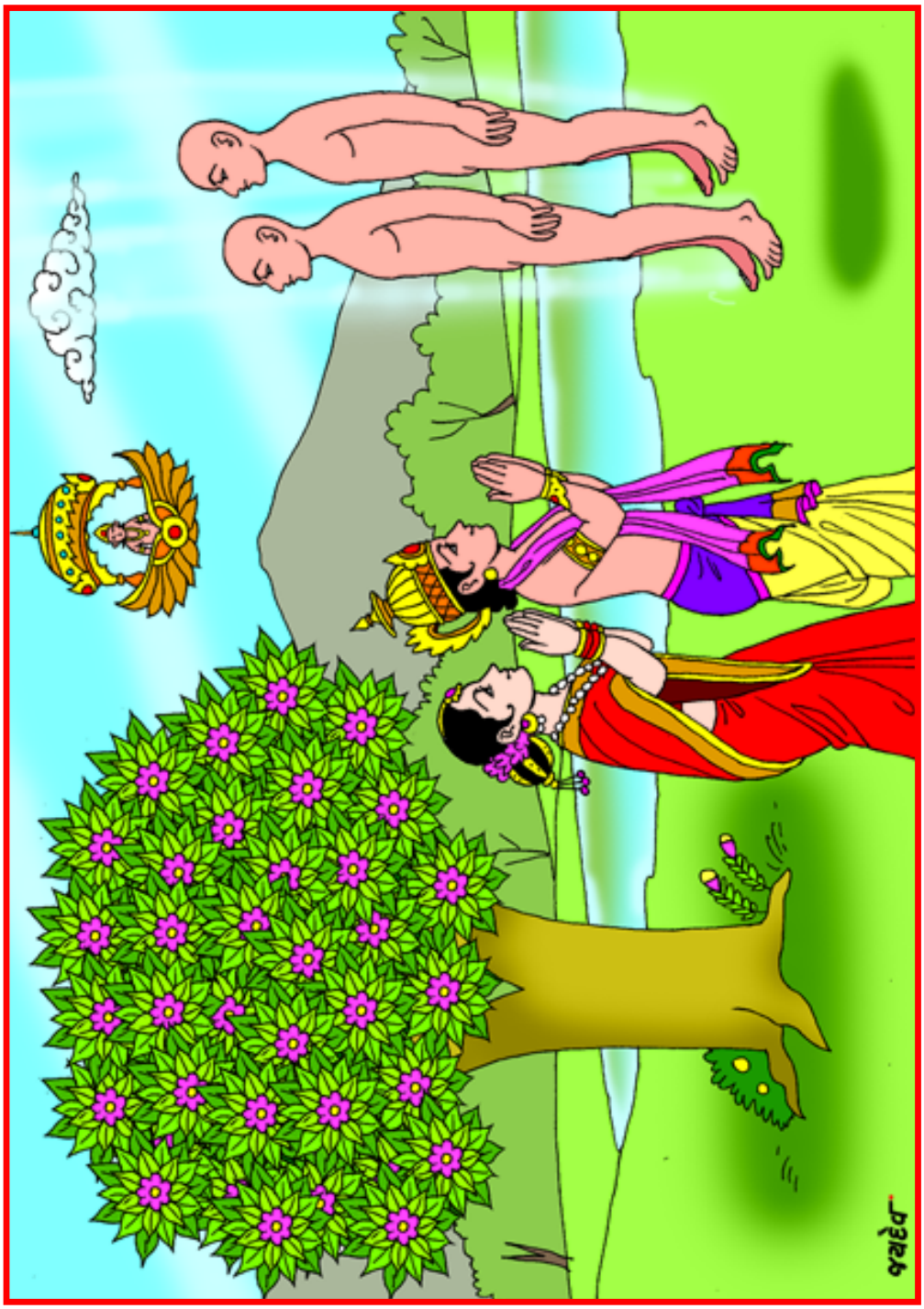

भोगभूमिमें प्रीतिंकर मुनिराज व उनके भाई(मुनिदशामें)को भक्तिसे आह्वानन करते आर्य–आर्या (वज्रजंघ व श्रीमतीका जीव)

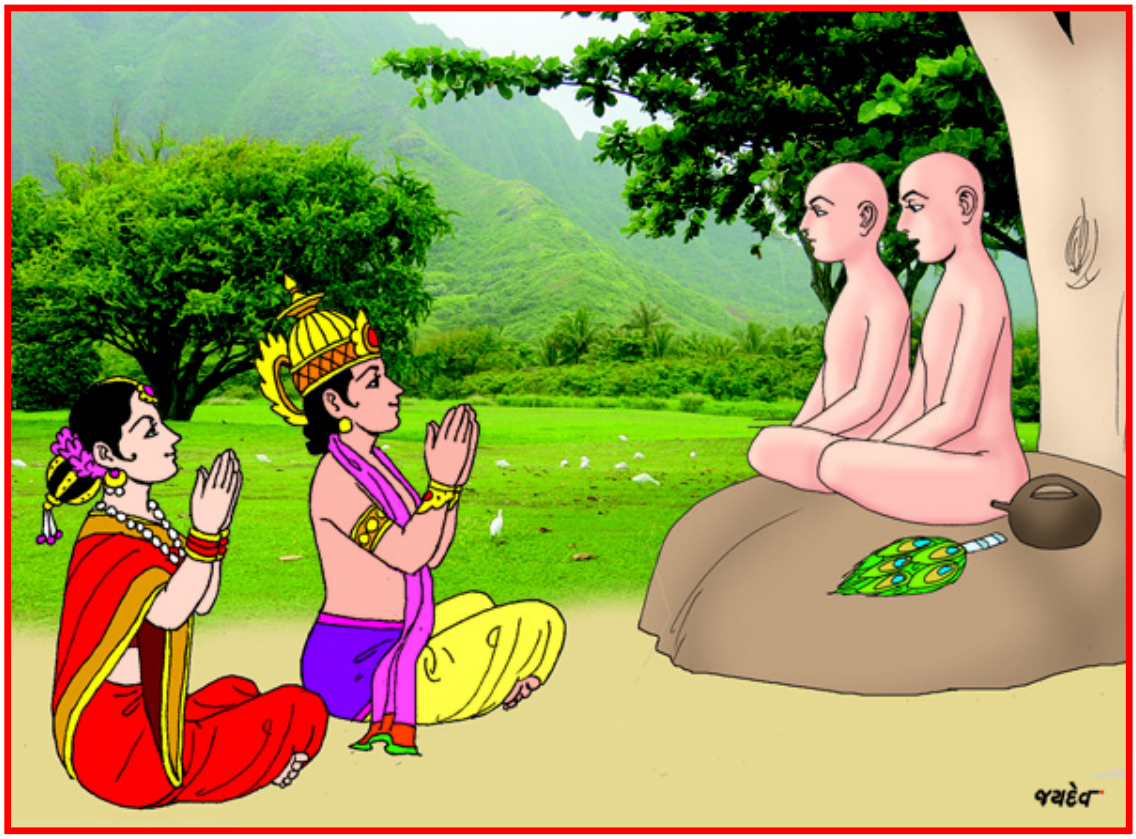

मुनिराजके उपदेशसे आर्य व आर्याको निर्मल सम्यक्त्वकी प्राप्ति

इस भवमें आदिनाथ भगवानके जीवको श्री प्रीतिंकर मुनिराजके उपदेशसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

मुनिराजके उपदेशसे आर्य और आर्याने (राजा वज्रजंघ और श्रीमतीके जीवने) अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी आत्माको निर्मल सम्यग्दर्शनसे विभूषित किया। कार्य हो चुकनेके बाद मुनिराज आकाशमार्गसे विहार कर गये।

(विस्तृत कथाके लिये देखें 'जैन पौराणिक कथाएँ भाग-२ पृष्ठ ५४ से ५९)

भगवान श्री आदिनाथका पूर्व छठवाँ भव श्रीधर देव

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां।
समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो।
जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–जिनका केवलज्ञानरूपी चक्षु समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाला है, जो इन्द्र आदि सत्पुरुषोंसे पूजित है, जीवाजीवादि समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाली बुद्धि ही जिनकी आत्माका स्वरूप है, ज्ञानावरणादि कर्ममलसे रहित होनेके कारण जो निर्मल है; चौदहवें कुलकर नाभिराजके पुत्र है, कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेवाले है, और जिन्होंने क्षुद्रवादियोंके शासनको जीत लिया है अथवा जिनका शासन क्षुद्रवादियोंके द्वारा नहीं जीता जा सका है वे धर्मसे सुशोभित रहनेवाले अथवा धर्मको सुशोभित करनेवाले वृषभनाथ भगवान मेरे चित्तको पवित्र करें–रागादि विकारी भावोंसे रहित कर निर्मल बनायें।

कुछ समय बाद आयु पूर्ण होने पर भोगभूमिका आर्य (पृ. ५०) ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर नामका देव हुआ और आर्याका जीव उसी स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका देव हुआ। शार्दूलका जीव उसी स्वर्गके चित्रांगद विमानमें चित्रांगद नामका, सुअरका जीव नन्द विमानमें मणिकुण्डली नामका, वानरका जीव नन्द्यावर्त विमानमें मनोहर नामका और नेवले का जीव प्रभाकर विमानमें मनोरथ नामका देव हुआ। वहाँ ये सब पुण्यके प्रतापसे अनेक तरहके भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे। किसी समय स्वयंबुद्ध मंत्रीके जीव प्रीतिङ्कर मुनिराजको श्रीप्रभ पर्वत पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सभी देव उनकी वन्दनाके लिये गये। श्रीधरदेवने भी जाकर अपने गुरु

प्रीतिंकर मुनिराजको केवलज्ञान प्राप्त होने पर दर्शन व देशना प्राप्त करते श्रीधर आदि देव

केवली भगवान प्रीतिङ्करको भक्ति सहित नमस्कार किया और धर्मका स्वरूप सुननेके बाद पूछा–भगवन्! महाबलके भवमें सम्भिन्नमति, शतमति और महामति मेरे जो तीन मिथ्यादृष्टि मंत्री थे, वे अब कहाँ पर हैं? भगवानने कहा कि सम्भिन्नमति और शतमति निगोद-राशिमें उत्पन्न होकर अचिन्त्य दुःख भोग रहे हैं और शतमति मिथ्याज्ञानके प्रभावसे दूसरे नरकमें कष्ट पा रहा है। जो जैसा कार्य करता है, वैसा ही फल पाता है।

यह सुनकर श्रीधर देवको बहुत ही दुःख हुआ। वह सम्भिन्नमति और महामतिके विषयमें तो कर ही क्या सकता था? हाँ, पुरुषार्थसे शतमतिको सुधार सकता था; इसलिये झटसे वह दूसरे नरकमें गया। वहाँ अवधिज्ञानसे शतमति मन्त्रीके नारकी जीवको पहिचानकर उससे कहने लगा—क्यों महाशय! आप मुझे पहिचानते हैं? मैं विद्याधरोंका राजा महाबलका जीव हूँ। मिथ्याज्ञानके कारण आपको ये नरकके तीव्र दुःख प्राप्त हुए हैं। अब यदि इनसे छुटकारा चाहते हो, तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे अपने-आपको अलंकृत करो। श्रीधर देवके उपदेशसे नारकी शतमतिने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन धारण कर लिया। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे उसका समस्त ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो गया। श्रीधर देव

दूसरे नरकमें दुःख भोगते शतमतिके जीवको सम्यक्त्व प्राप्त कराते श्रीधर देव

कार्यकी सफलतासे प्रसन्न चित्त होता हुआ अपने स्थान पर वापिस लौट आया। शतमति नारकीका जीव भी नरककी आयु पूर्ण कर पुष्करार्ध द्वीपके पूर्वार्ध भागमें सुशोभित पूर्व विदेह सम्बन्धी मंगलावती देशमें स्थित रत्नसञ्चय नगरमें रहनेवाले सुन्दरी और मनोहर नामक राज-दम्पत्तिके जयसेन नामका पुत्र हुआ। जिस समय जयसेनका विवाह होनेवाला था, उसी समय श्रीधरदेवने जाकर उसे समझाया और नरकके समस्त दुःखोंकी याद दिलाई।

जिससे उसने संसारसे विरक्त होकर यमधर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली और

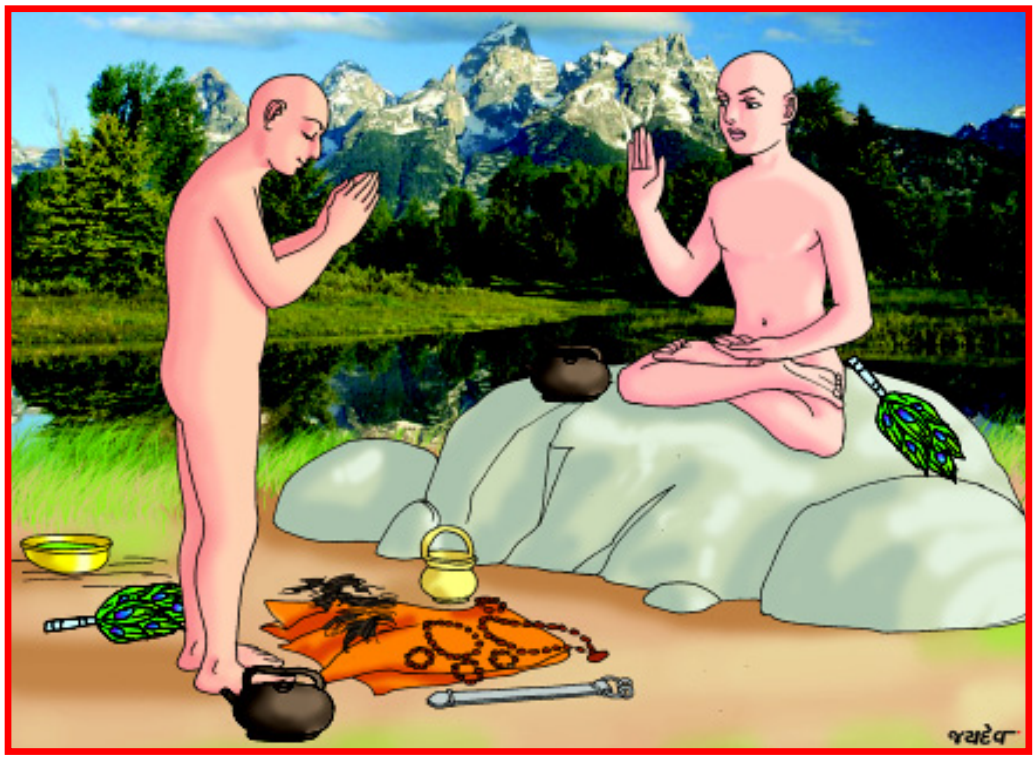

श्रीधर देव द्वारा समझानेसे राजा जयसेन (मंत्री शतमतिका जीव)का दीक्षा ग्रहण

कठिन तपश्चर्याके प्रभावसे मर कर पाँचवें स्वर्गमें ब्रह्मेन्द्र हुआ। ब्रह्मेन्द्रने जब अवधिज्ञानसे अपने उपकारी श्रीधरदेवका परिचय प्राप्त किया, तब उसके पास जाकर विनम्र मीठे शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट की।

भगवान श्री आदिनाथका पूर्व पाँचवाँ भव

स्नात स्वमलगम्भीरं जिनामितगुणार्णवम्।
पूतश्रीमज्जगत्सारं जनायात क्षणाच्छिवम्॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे भव्यजनों! जिनेन्द्रदेव (आदिनाथ प्रभु) का जो अपरिमित गुणसमुद्र है, वह अत्यन्त निर्मल, गम्भीर, पवित्र, श्रीसम्पन्न और जगत्का सारभूत है। तुम उसमें स्नान करो–एकाग्र चित्त होकर उसमें अवगाहन करो, उसके गुणोंको पूर्णतया अपनाओ और शीघ्र ही शिवको–आत्मकल्याणको–प्राप्त करो।

कुछ समय बाद श्रीधरदेव (आदिनाथ भगवानका पूर्व छट्ठा भव) स्वर्गसे चयकर जम्बूद्वीपके पूर्व-विदेह सम्बन्धी महा वत्सकावती देशमें स्थित सुसीमा नगरीके सुदृष्टि और सुनन्दा नामक राज-दम्पत्तिका सुविधि नामक पुत्र हुआ।

सुविधि बहुत ही भाग्यशाली और बुद्धिमान लड़का था। अभयघोष चक्रवर्ती उसके मामा थे। चक्रवर्तीके मनोहरा नामकी एक सुन्दर कन्या थी, जो सचमुचमें

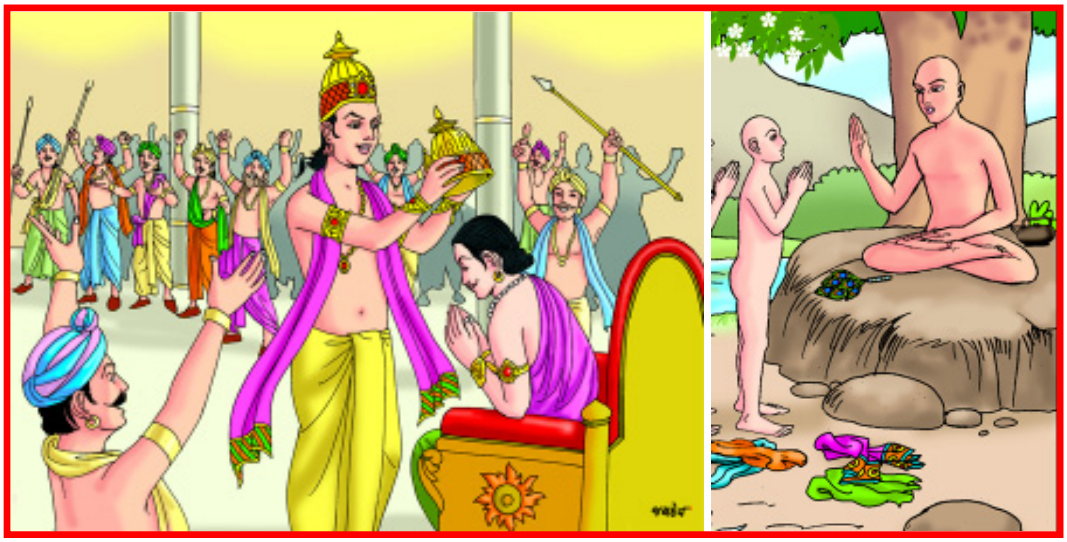

युवराज सुबुद्धिका राज्याभिषेक　　राजा सुदृष्टिकी जिनदीक्षा

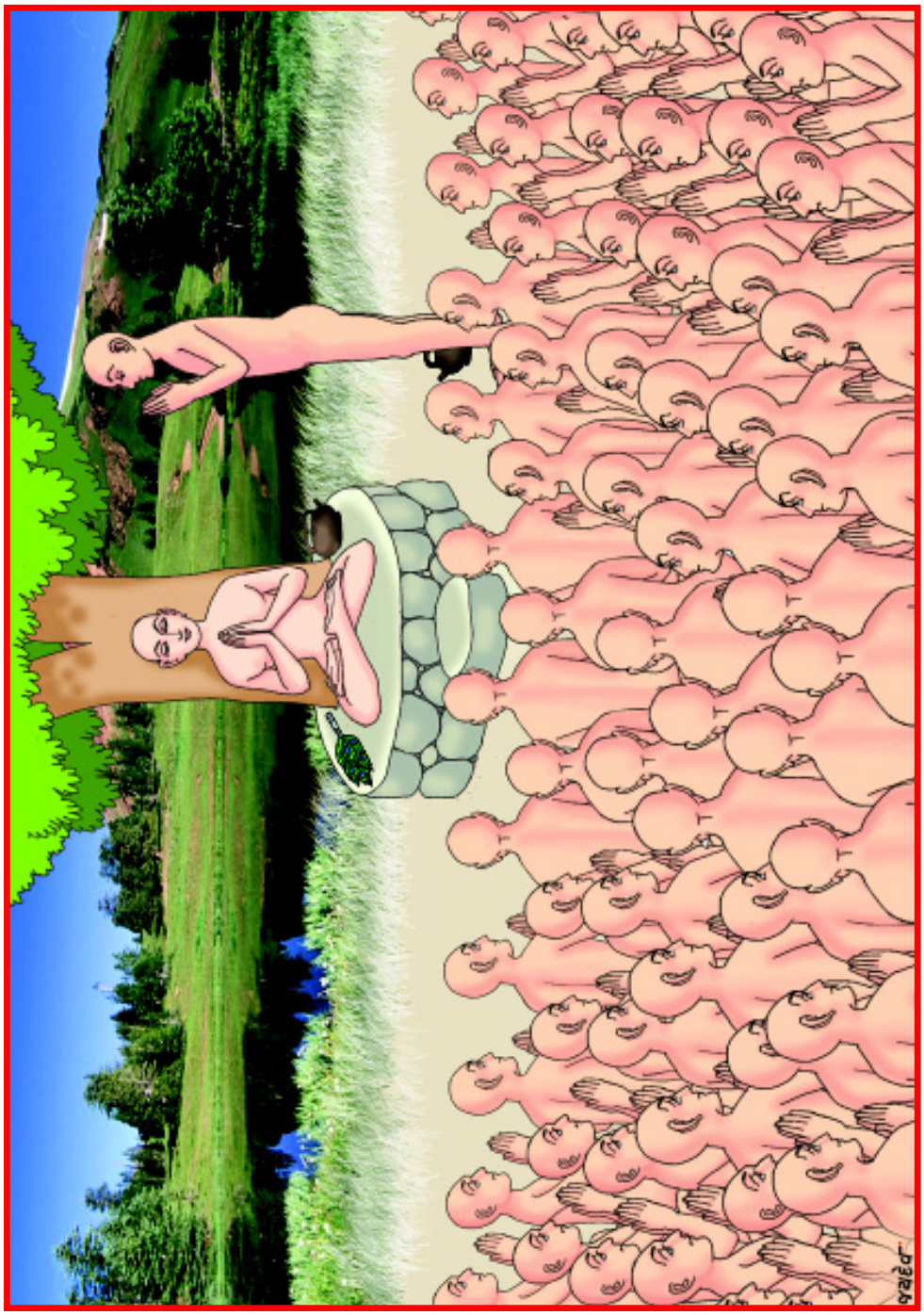

अभयघोष चक्रवर्ती द्वारा अठारह हजार राजाओं सह भगवती जिनदीक्षा ।
वरदत्त आदि ४ जीवों (जिन्होंने आहारदानकी अनुमोदना की थी) द्वारा भी भगवती जिनदीक्षा

मनोहरा ही थी। राजा सुदृष्टिने सुविधिकी विवाह-योग्य अवस्था देखकर उसका विवाह मनोहराके साथ करवा दिया, जिससे वे दोनों विविध भोगोंको भोगते हुए सुखसे समय बिताने लगे।

कुछ समय बाद राज्यका भार सुविधिको सौंप कर राजा सुदृष्टि मुनि हो गये। सुविधि राज्य-कार्यमें बहुत ही कुशल था, जिससे उसकी धवल कीर्ति चारों ओर फैल गई थी और समस्त शत्रुओंकी सेना अपने-आप वश हो गई थी।

समय पाकर राजा सुविधिके केशव नामका एक पुत्र हुआ। राजा वज्रजंघकी पर्यायमें जो श्रीमतीका जीव था, वह भोगभूमिके सुख भोग चुकनेके बाद स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ देव हुआ था। वही जीव राजा सुविधिके केशव नामका पुत्र हुआ था। राजा वज्रजंघका जीव सुविधि हुआ था। पूर्व-भवके संस्कारसे राजा सुविधिका उस पर अधिक स्नेह रहता था। शार्दूलका जीव चित्रांगद भी स्वर्गसे चयकर इसी देशमें राजा विभिषणकी प्रियदत्ता पत्नीसे वरदत्त नामका पुत्र हुआ। सुअरका जीव मणिकुण्डली देव अनन्तमती और नन्दिषेण नामक राज-दम्पत्तिके वरसेन नामका पुत्र हुआ। वानरका जीव मनोहर देव चन्द्रमती और रतिषेण नामक राज दम्पत्तिके चित्रांगद नामका पुत्र हुआ और नेवलेका जीव मनोहर देव चित्रमालिनी और प्रभञ्जन नामक राज-दम्पत्तिके मदन नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुआ। ये चारों ही राजपुत्र हुए थे।

कुछ समय बाद चक्रवर्ती अभयघोषने अठारह हजार राजाओंके साथ विमलवाहन नामक मुनिराजके पास जिन-दीक्षा ले ली। वरदत्त, वरसेन, चित्राङ्गद और मदन भी चक्रवर्तीके साथ दीक्षित हो गये थे। पर राजा सुविधिका अपने पुत्र केशव पर अधिक स्नेह था। इसलिये वे घर छोड़ कर मुनि न हो सके; किन्तु उत्कृष्ट श्रावकके व्रत रख कर घर पर ही धर्म-सेवन करते रहे। आयुके अन्तमें सुविधि राजाने महाव्रत धारण कर कठिन तपस्याके प्रभावसे वे सोलहवें अच्युत स्वर्गमें अच्युतेन्द्र हुए और पिताके वियोगसे दुःखी होकर केशवने भी जिनदीक्षा धारण की। आयुके अन्तमें समाधिमरण करके उसी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ। तथा वरदत्त आदि राजपुत्र भी अपने तपके प्रभावसे वे सामानिक देव हुए। उन सबकी विभूति समान थी।

श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व चौथा भव

धिया ये श्रितयेतात्यां यानुपायान्वरानताः।
येऽपापा यातपारा ये श्रियाऽऽयातानतन्वत।।
आसते सततं ये च सति पूर्वक्षयालये।
ते पुणयदा स्तायातं सर्वदा माऽभिरक्षत।।

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–जो पीडारहित—अनन्तसुखसम्पन्न है, प्राप्त हुई–ज्ञानावरणकर्मके अत्यन्त क्षयसे उपलब्ध–केवलज्ञानरूपी बुद्धिसे सहित हैं; जिन्हें उपाय-उपगम्य-सेवनीक (समझकर) इन्द्र आदि श्रेष्ठ पुरुष नमस्कार करते हैं; जो पापकर्ममलसे रहित हैं, जो (संसारसमुद्रके) पारको पा चुके है अथवा जिन्होंने सब पदार्थ जान लिये हैं; जो शरणमें आये हुए भव्यपुरुषोंको लक्ष्मी द्वारा विस्तृत करते हैं—केवलज्ञानादि लक्ष्मीसे युक्त करते हैं और जो उत्कृष्ट तथा अविनाशी मोक्षमन्दिरमें सदा निवास करते हैं–वे कल्याणप्रदाता आदिनाथ जिनेन्द्र भगवान! भक्तिसे सन्मुख आये हुए मुझ भक्तकी सदा रक्षा करें—उनके भक्तिपूर्वक आराधनसे मैं अपना आत्मविकास करनेमें समर्थ हो सकूँ।

राजा सुविधि (आदिनाथ भगवानका जीव पृ. ५७) घोर तपश्चरणपूर्वक मनुष्य आयुष्य पूर्ण कर सोलहवें अच्युत स्वर्गमें अच्युतेन्द्र होते हैं। पिताके वियोगसे दुःखी होकर केशवने भी जिनदीक्षा ले ली। वह आयुके अन्तमें मरकर उसी स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ तथा वरदत्त आदि राज-पुत्र भी अपनी तपस्याके प्रभावसे उसी स्वर्गमें सामानिक जातिके देव हुए। इन सभीकी विभूति समान थी। वहाँ अच्युतेन्द्रकी बाईस सागर प्रमाण आयु थी। बाईस हजार वर्ष बीत जाने पर आहारकी अभिलाषा होते ही शीघ्र स्वतः कण्ठमें अमृत झर जाता था। बाईस पक्षमें इन्द्राणीका स्मरण होते ही उसकी कामवासना शान्त हो जाती थी। कहनेका मतलब यह है कि वह हर तरहसे सुखी था। वे छहों जीव वहाँ आत्मानुभवपूर्वक आत्म आराधना सह श्री जिनेन्द्र पूजा, धर्मचर्चा करते थे। वे वहाँसे मध्यलोकमें तीर्थंकरोंके समवसरणमें जाकर उनके अतिभावसे दर्शन, पूजन करते उनकी दिव्य वाणीका श्रवण भी करते थे।

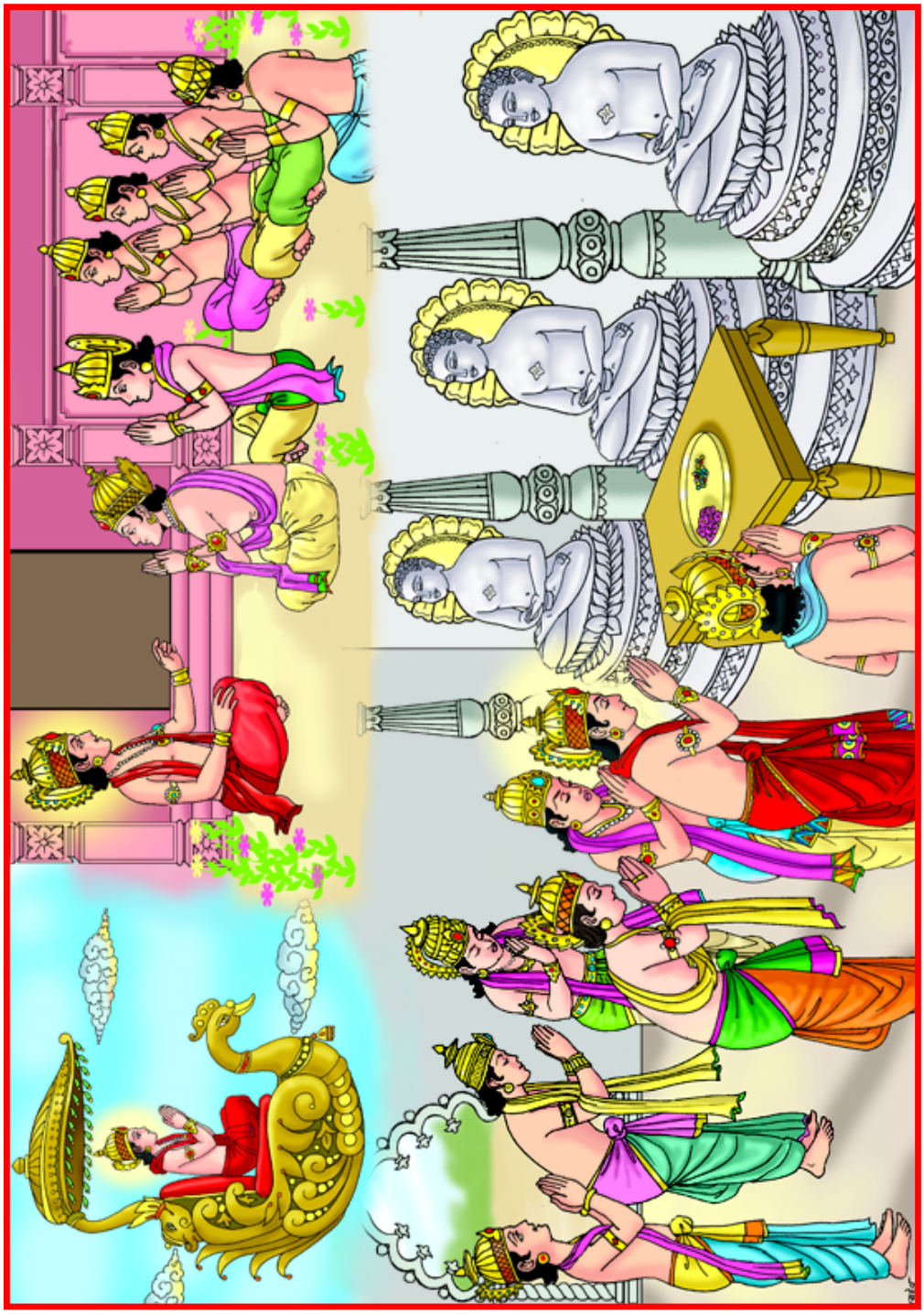

अच्युतेन्द्र आदि देवों द्वारा अकृत्रिम जिनालयोंकी पूजा-वंदना व शास्त्रस्वाध्याय

श्री आदिनाथ भगवानका पूर्व तीसरा भव

नतपीलासनाशोक सुमनोवर्षभाषितः।
भामण्डलासनाऽशोकसुमनोवर्षभाषितः॥
दिव्यै र्ध्वनिसितच्छत्रचामरैर्दुन्दुभिस्वनैः।
दिव्यैर्विनिर्मितस्तोत्रश्रमदर्दुरिभिर्जनैः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे ऋषभदेव! आप नम्र मनुष्योंकी सांसारिक व्यथाओंको हरनेवाले हैं, शोकरहित हैं, आपका हृदय उत्तम है–लोककल्याणकारक भावनासे पूर्ण है। हे प्रभो! आप भामण्डल, सिंहासन, अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि, मनोहर दिव्यध्वनि, श्वेतछत्र, चमर और दुन्दुभिनिनादसे शोभित होकर, अनेक स्तोत्रोंमें श्रम करनेवाले–मधुरध्वनिसे अनेक स्तुति करनेवाले–तथा विविध वाद्योंसे सहित दिव्यजनोंके–देवेन्द्र विद्याधर चक्रवर्ती आदिके–साथ (समवसरणभूमिमें) आसीन–(स्थित) हुए थे और उन्हींके साथ आपने आकाशविहार किया था।

आयुके अन्तमें वह अच्युतेन्द्र स्वर्गसे चयकर जम्बूद्वीप-सम्बन्धी पूर्व-विदेहमें स्थित पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें श्रीकान्ता और वज्रसेन नामक राज-दम्पत्तिका पुत्र हुआ। वहाँ उसका नाम वज्रनाभि था।

वरदत्त, वरसेन, चित्रांगद और मदन जो कि अच्युत स्वर्गमें सामानिक देव हुए थे, वहाँसे चयकर क्रमसे वज्रनाभिके विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके लघु सहोदर (छोटे भाई) हुए और केशव, जो सोलहवें स्वर्गमें प्रतीन्द्र हुआ था, वहाँसे चयकर इसी पुण्डरीकिणीपुरीमें कुबेरदत्त तथा अनन्तमती नामक वैश्य दम्पत्तिके धनदेव नामका पुत्र हुआ। वज्रनाभिके वज्रजंघ भवमें जो मतिवर, आनन्द, धनमित्र और

अकम्पन नामके मंत्री, पुरोहित, सेठ और सेनापति थे, वे मरकर अधोग्रैवेयकमें अहमिन्द्र हुए थे। अब वे भी वहाँसे चयकर वज्रनाभिके भाई हुए हैं। वहाँ उनके सुबाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नाम रक्खे गये थे। इस तरह ऊपर कहे हुए दसों बालक एक साथ खेलते, बैठते, उठते, लिखते और पढ़ते थे, क्योंकि उन सबका परस्परमें बहुत प्रेम था।

राज-पुत्र वज्रनाभिका शरीर पहिलेसे ही सुन्दर था, पर यौवनावस्था आने पर वह और भी अधिक सुन्दर मालूम होने लगा था। उस समय उनकी लम्बी और स्थूल भूजाएँ, चौड़ा सीना, गम्भीर नयन तथा तेजस्वी चेहरा देखते ही बनता था।

एक दिन वज्रनाभिके पिता वज्रसेन महाराज संसारके विषयोंसे उदासीन होकर वैराग्यका चिन्तवन करने लगे। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनके विचारोंका समर्थन किया, जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ़ गया। अन्तमें वे ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभिको राज्य देकर हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गये और कठिन तपस्याके

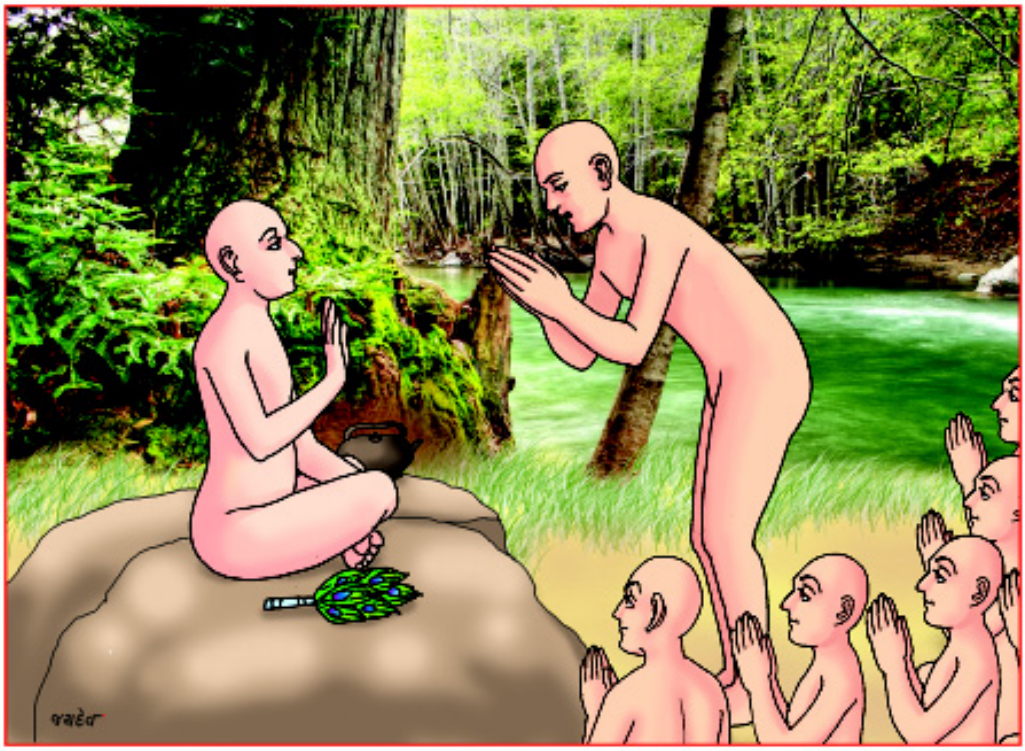

महाराजा वज्रसेनका भगवती जिनदीक्षा ग्रहण

चक्रवर्ती वज्रनाभिका पुत्रों, राजाओं, भाईओं सह दीक्षाग्रहण करके प्राप्त तीर्थंकर नामक प्रकृतिका बंध

प्रभावसे केवलज्ञान प्राप्त कर अपनी दिव्य वाणीसे पथ-भ्रान्त पुरुषोंको सच्चा मार्ग बतलाने लगे। कुछ समय बाद आठों कर्मोंको नष्ट कर वे मोक्ष पहुँच गये। इधर वज्रनाभिकी आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ, जिसमें एक हजार आरे थे, जो कान्तिमें सहस्र-किरण सूर्य-सा चमकता था। चक्ररत्नको आगे कर वज्रनाभि दिग्विजयके लिये निकले और कुछ समय बाद दिग्विजयी होकर लौट आये। अब वज्रनाभि चक्रवर्ती कहलाने लगे थे। उनका प्रताप और यश चारों ओर फैल रहा था। उस समय वहाँ उनसा सम्पत्तिशाली पुरुष दूसरा नहीं था। जो केशव (श्रीमतीका जीव) स्वर्गसे चयकर पुण्डरीकिणीपुरीमें कुबेरदत्त और अनन्तमती नामक वैश्य-दम्पत्तिके धनदेव नामका पुत्र हुआ था, वह वज्रनाभिका गृहपति नामक रत्न हुआ। इस प्रकार नौ निधि और चौदह रत्नोंके स्वामी सम्राट वज्रनाभिका समय सुखसे बीतने लगा।

किसी समय महाराज वज्रनाभिका चित्त संसारसे विरक्त हो गया, जिससे वे अपने पुत्र वज्रदन्तको राज्यका भार सौंपकर सोलह हजार राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाईयों और धनदेवके साथ तीर्थंकरके समीप दीक्षित होकर तपस्या करने लगे। वज्रनाभिने वहीं पर दर्शन-विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रतोंमें अतिचार हीनता, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग, संवेग, शक्त्यनुसार तप और त्याग, साधु-समाधि वैयावृत्य, अर्हद्भक्ति, आचार्य-भक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचन-भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्ग-प्रभावना और प्रवचन-वात्सल्य—इन सोलह भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे उन्हें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध हो गया।

आयुके अन्तमें वे श्रीप्रभ नामक पर्वतके शिखर पर पहुँचे और वहाँ शरीरसे ममत्व छोड़कर आत्म-समाधिमें लीन हो गये। जिसके फल स्वरूप नश्वर देहको छोड़कर वे सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए।

आदिनाथ भगवानका पूर्व दूसरा भव सर्वार्थसिद्धिमें

भगवान श्री आदिनाथका पूर्व दूसरा भव

यतः श्रितोपि कान्ताभिर्हृष्टा गुरुतया स्ववान्।
वीतचेतोविकाराभिः स्रष्टा चारुधियां भवान्॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे प्रभो! यद्यपि आप समवसरणमें अनेक निर्विकार–कामेच्छासेरहित–सुन्दर देवियोंके द्वारा सेवित होते हैं—बहुत देवियाँ आपकी उपासना करती हैं—तथापि आत्मवान्–जितेन्द्रिय होनेके कारण आप महान्—पूज्य ही माने जाते हैं, अतः निर्मलबुद्धिके उत्पन्न करनेवाले विधाता आप ही हो।

वज्रनाभि चक्रवर्ती(कथा पृ. ६५)ने मुनिपनेमें भगवती तप धारणकर सोलह भावनाओंपूर्वक मनुष्य आयु पूर्ण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए। वहाँ उनकी आयु तैंतीस सागर प्रमाण थी और शरीर एक हाथ ऊँचा तथा सफेद रंगका था। वे कभी संकल्पमात्रसे प्राप्त हुए जल, चन्दन आदिसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते और कभी अपनी इच्छासे पासमें आये हुए अहमिन्द्रोंके साथ तत्त्व-चर्चाएँ करते थे। तैंतीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें आहारकी अभिलाषा होती थी; सो तत्काल उनके कण्ठमें अमृत झर जाता था; इसके पश्चात् फिर उतने ही समयके लिये वे निश्चिन्त हो जाते थे। उनका श्वासोच्छ्वास भी तेतीस पक्षमें चला करता था। संसारमें उन जैसा सुखी कोई दूसरा नहीं था। यह अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान वृषभनाथ होंगे। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सुबाहु, बाहु, पीठ, महापीठ और धनदेव भी जो इन्हींके साथ दीक्षित हो गये थे, आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुये थे। इन सबका वैभव आदि भी अहमिन्द्र वज्रनाभिके समान था। ये सभी भगवान श्री वृषभनाथके साथ मोक्ष प्राप्त करेंगे।

भगवान श्री आदिनाथका प्रवर्तमान भव

विश्वमेको रुचामाऽऽको व्यापो येनार्य्य! वर्तते।
शश्वल्लोकोऽपि चाऽलोको द्वीपो ज्ञानार्णवस्य ते॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे आर्य! यह समस्त लोक और अलोक आपके केवलज्ञानका ही ज्ञेय है—आपका केवलज्ञान लोकवर्ति समस्त पदार्थों और अलोकाकाशको जानता है—अतः वह आपके ज्ञानरूप समुद्रका एक द्वीप है।

भगवान उमास्वामीने कहा है कि भरत और ऐरावत क्षेत्रमें उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कालके द्वारा क्रमसे वृद्धि और हानि होती रहती है—जिस प्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कलाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं, उसी प्रकार उत्सर्पिणी कालमें लोगोंकी कला, विद्या, आयु आदि वस्तुएँ बढ़ती जाती हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रमें शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्षकी भाँति उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकालका परिवर्तन होता रहता है। उनके छह भेद हैं–१ दुःषमा-दुःषमा, २ दुःषमा, ३ दुःषमा-सुषमा, ४ सुषमा-दुषमा, ५ सुषमा एवं ६ सुषमा-सुषमा—यह क्रम उत्सर्पिणीका है। अवसर्पिणीका क्रम इससे उल्टा होता है। ये दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं, जिसका प्रमाण बीस कोड़ा-कोड़ी सागर है।

अभी इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी कालका सञ्चार हो रहा है। उसके सुषमा-सुषमा नामक पहिले भेदका समय चार कोड़ा-कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य उत्तर कुरुके मनुष्योंके समान होते थे। वहाँ पर जीवोंकी आयु तीन पल्यकी होती है, शरीरकी ऊँचाई छह हजार धनुषकी होती है। वहाँके लोगोंका रंग सोने-सा चमकीला होता है और वे तीन-तीन दिन बाद थोड़ा-सा आहार लेते हैं।

फिर क्रम-क्रमसे हानि होने पर दूसरा सुषमा काल आता है, जिसका प्रमाण तीन कोड़ा-कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य हरिवर्ष क्षेत्रके मनुष्योंकी भांति होते हैं; उनकी आयु दो पल्यकी और शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी होती है। वे दो दिन बाद थोड़ा-सा आहार लेते हैं; उनका शरीर शङ्खके समान श्वेत वर्णका होता है।

फिर क्रमसे हानि होने पर तीसरा सुषमा-दुःषमा काल आता है, जिसका प्रमाण दो कोड़ा-कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भमें मनुष्य हैमवत् क्षेत्रके मनुष्योंकी भाँति होते हैं; वे एक पल्य तक जीवित रहते हैं, उनका शरीर दो हजार धनुष ऊँचा होता है वे एक दिन बाद थोड़ा आहार लेते हैं और उनके शरीरका रंग नीलकमलके समान नीला होता है।

फिर क्रमसे हानि होने पर चौथा दुःषमा-सुषमा काल आता है, जिसका प्रमाण ब्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ा-कोड़ी सागर है। उसके प्रारम्भ कालमें मनुष्य, विदेह क्षेत्रके मनुष्योंके सदृश होते हैं। उनके शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुषकी और आयु एक करोड़ पूर्व वर्षकी होती है। वे दिनमें एक-दो बार आहार करते हैं।

फिर क्रमसे हानि होने पर पाँचवाँ दुःषमा काल आता है, जिसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्षका है। इसके प्रारम्भमें मनुष्योंकी ऊँचाई पहिलेसे बहुत कम हो जाती है; यहाँ तक कि साढ़े तीन हाथ ही रह जाती है; आयु भी बहुत कम हो जाती है। उस समयके लोग दिनमें कई बार खाने लगते हैं।

फिर क्रमसे परिवर्तन होने पर दुःषमा-दुःषमा नामका छट्ठा काल आता है, जिसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्षका है। छट्ठे कालमें लोगोंकी अवगाहना शरीरकी ऊँचाई एक हाथकी रह जाती है, आयु बिलकुल थोड़ी रह जाती है और उनके शरीर भी कुरूप होने लगते हैं। इसी तरह उत्सर्पिणीके भी छह भेद होते हैं और उनका प्रमाण भी दश कोड़ा-कोड़ी सागरका होता है; परन्तु इनका क्रम अवसर्पिणीके क्रमसे विपरीत होता है। जब यहाँ अवसर्पिणीका क्रम पूरा हो चुकेगा, तब उत्सर्पिणीका सञ्चार होगा।

हमें जिस समयका वर्णन करना है, उस समय यहाँ अवसर्पिणीका तीसरा सुषमा-

दुःषमा काल चल रहा था। तीसरे कालमें यहाँ जघन्य भोगभूमि जैसी रचना थी। कल्पवृक्षोंके द्वारा ही मनुष्योंकी आवश्यकताएँ पूर्ण हुआ करती थीं। स्त्री और पुरुष साथमें उत्पन्न होते थे और वे सात सप्ताहमें पूर्ण यौवन प्राप्त हो जाते थे। उस समय कोई किसी बातके लिये दुःखी नहीं था, सभी मनुष्य एक समान वैभववाले थे, कोई किसीके आश्रित नहीं था, सभी स्वतंत्र थे। पर ज्यों ज्यों तीसरा काल बीतता गया, त्यों–त्यों ऊपर कही हुई बातोंमें न्यूनता आती गई। यहाँ तक कि तीसरे कालके अन्तिम पल्यमें बहुत कुछ परिवर्तन हो चुके थे।

स्त्री-पुरुषोंका एक साथ उत्पन्न होना बन्द हो गया था। पहिले बालक-बालिकाओंके उत्पन्न होते ही उनके माता-पिताकी मृत्यु हो जाती थी; पर जब वह प्रथा धीरे-धीरे बन्द होने लगी, तब कल्पवृक्षोंकी कान्ति मन्द पड़ गयी और फिर धीरे-धीरे वे नष्ट भी हो गये। बिना बोये अनाज पैदा होने लगा; सिंह, व्याघ्र आदि पशु उपद्रव करने लगे। इन सब विचित्र परिवर्तनोंसे जब जनता घबड़ाने लगी, तब क्रमसे इस भारतवर्षमें प्रतिश्रुति १, सन्मति २, क्षेमङ्कर ३, क्षेमन्धर ४, सीमङ्कर ५, सीमन्धर ६, विमलवाहन ७, चक्षुष्मान ८, यशस्वी ९, अभिचन्द्र १०, चन्द्राभ ११, मरुदेव १२, प्रसेनजित १३ और नाभिराज १४—ये चौदह महापुरुष हुए। इन महापुरुषोंने अपने बुद्धि-बलसे जनताका संरक्षण किया—इसलिये लोग इन्हें 'कुलकर' कहते थे। यहाँ पर चौदहवें कुलकर नाभिराजका कुछ वर्णन करना अनावश्यक नहीं होगा; क्योंकि कथानायक भगवान श्री वृषभनाथका इनके साथ विशेष सम्बन्ध रहा है।

यहाँ जब भोगभूमिकी रचना मिट चुकी थी और कर्मभूमिकी रचना प्रारम्भ हो रही थी, तब अयोध्या नगरीमें अन्तिम कुलकर नाभिराजका जन्म हुआ था। ये स्वभावसे ही परोपकारी, मृदुभाषी और प्रतिभाशाली पुरुष थे। इनकी आयु एक करोड़ वर्ष पूर्व थी और शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ पचीस धनुषकी थी। इनके मस्तक पर बंधा हुआ सोनेका मुकुट बड़ा ही भव्य मालूम होता था। इनके समयमें जन्मके समय बालककी नाभिमें नाल दिखाई देने लगी थी। महाराज नाभिराजाने उस नालके काटनेका उपाय बतलाया था, इसलिये उनका 'नाभिराजा' सार्थक नाम प्रसिद्ध हुआ था। इन्हींके समयमें आकाशमें श्यामल मेघ दिखने लगे थे और उनमें इन्द्रधनुषकी विचित्र आभा छिटकने

लगी थी। उन मेघोंमें मृदङ्गके शब्द जैसा सुन्दर शब्द सुनाई पड़ता और कभी बिजली चमकती थी। वर्षा होनेसे पृथ्वीकी शोभा अपूर्व हो गई थीं। कहीं सुन्दर निर्झर कलरव करते हुए बहने लगे थे, कहीं पहाड़ोंकी गुफाओंसे इठलाती हुई नदियाँ बहने लगी थीं, कहीं मेघोंकी गर्जना सुनकर वनोंमें मयूर नाचने लगे थे, आकाशमें सफेद बगुले उड़ने लगे थे और समस्त पृथ्वी पर हरी-हरी घास उत्पन्न हो गई थी, जिससे ऐसा मालूम पड़ता था, मानों पृथ्वी हरी साड़ी पहिन कर नवीन अभ्यागत पावस ऋतुका स्वागत करनेके लिये ही उद्यत हुई हो। उस वर्षासे खेतोंमें अपने-आप तरह-तरहके धान्यके अंकूर उत्पन्न होकर समय पर योग्य फल देनेवाले हो गये थे। इस प्रकार उस समय यद्यपि भोग-उपभोगकी समस्त सामग्री मौजूद थी, परन्तु उस समयकी प्रजा उसे काममें लाना नहीं जानती थी; इसलिये वह उसे देखकर भ्रममें पड़ गई थी। अबतक भोगभूमि बिलकुल मिट चूकी थी और कर्म-युगका प्रारम्भ हो गया था, परन्तु लोग कर्म करना जानते नहीं थे; इसलिये वे भूख-प्याससे दुःखी होने लगे।

एक दिन चिन्तासे आकुल हुए समस्त प्राणी महाराज नाभिराजके पास पहुँचे

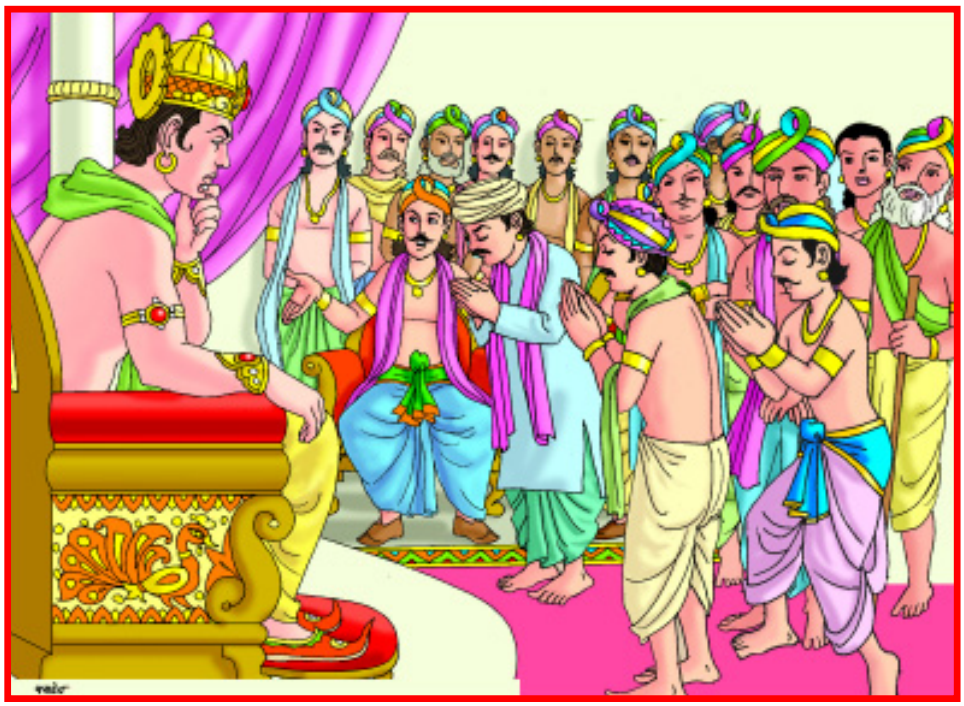

कल्पवृक्षके अभावमें लोगोंको जीवन जीनेका उपाय बताते राजा नाभिराज

और उनसे दीनतापूर्वक प्रार्थना कर कहने लगे—महाराज! आपके उदयसे अब मनचाहे फल देनेवाले कल्पवृक्ष नष्ट हो गये हैं; इसलिये हम सब भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे हैं, कृपा कर जीवित रहनेका कुछ उपाय बतलाईये। नाथ! देखिये, कल्पवृक्षोंके बदले ये अनेक अन्य वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, जो फलके भारसे नीचे झुक रहे हैं। इनके फल खानेसे हम लोग मर तो न जावेंगे? और ये खेतोंमें कई तरहके छोटे-छोटे पौधे लगे हुए हैं, जो धानके भारसे झुकनेके कारण ऐसे मालूम होते हैं, मानों अपनी जननी महादेवीको नमस्कार ही कर रहे हों। कहिये, ये सब किसलिये पैदा हुए हैं? महाराज! आप हम सबके रक्षक हैं, बुद्धिमान हैं, इसलिये इस सङ्कटके समय हमारी रक्षा कीजिये। प्रजाके ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर नाभिराजाने मधुर वचनोंसे सबको सन्तोष दिलाया और युगके परिवर्तनका हाल बताते हुए कहा कि भाईयों! कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जाने पर भी ये साधारण वृक्ष तुम्हारा वैसा ही उपकार करेंगे, जैसा कि पहिले कल्पवृक्ष किया करते थे। देखो, ये खेतोंमें अनेक तरहके अनाज पैदा हुए हैं; इनके खानेसे तुम लोगोंकी भूख शान्त हो जावेगी और इन सुन्दर कुएँ, बावड़ी, निर्झर आदिका पानी पीनेसे तुम्हारी प्यास मिट जावेगी। इधर देखो, ये लम्बे-लम्बे गन्नेके पेड़ दिख रहे हैं, जो बहुत ही मीठे हैं; इन्हें दाँतों अथवा यन्त्रसे पेल कर इनका रस पीना चाहिये और इस ओर देखो, इन गाय, भैंसोंके स्तनोंसे सफेद-सफेद मीठा दूध झर रहा है, इसे पीनेसे शरीर पुष्ट होता है और भूख मिट जाती है। इस तरह दयालु महाराज नाभिराजने उस दिन प्रजाको कई तरहके मिट्टीके बर्तन बना कर दिये एवं

राजा नाभिराजके सिखाये अनुसार मिट्टीके बर्तन बनाते लोग

आगे इसी तरहका बनानेका उपदेश भी दिया। नाभिराजके मुखसे यह सब सुनकर प्रजाजन बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके द्वारा बतलाये हुए उपायोंको काममें ला कर सुखसे रहने लगे।

पहिले लोग बहुत ही भद्र-परिणामी होते थे; इसलिये उनसे किसी प्रकारका अपराध नहीं होता था। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों लोगोंके परिणाम कुटिल होते गये और वे अपराध करने लगे; इसलिये नाभिराजने और उनके पहिलेके कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको दण्ड देनेके लिये दण्ड-विधान भी चलाया था। ध्यानपूर्वक सुनो—उनका दण्ड-विधान! प्रारम्भके पाँच कुलकरोंने अपराधी मनुष्योंको 'हा' इस तरह शोक प्रकट-रूप दण्ड देना शुरू किया था। उनके बादके पाँच कुलकरोंने 'हा' शोक प्रकट करना तथा 'मा, अब ऐसा नहीं करना' ये दो दण्ड चलाये थे और उनसे पीछे के कुलकरोंने 'हा' 'मा' 'धिक्'—ये तीन प्रकारके दण्ड चलाये थे।

राजा नाभिराजकी स्त्रीका नाम मरुदेवी था। मरुदेवीके उत्कर्षके विषयमें उनके नख-शिखका वर्णन न कर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसके समान सुन्दरी और सदाचारिणी स्त्री पृथ्वीतल पर न हुई है, न है और न होगी। राजा नाभिराजकी राजधानी अयोध्यापुरी थी। राज-दम्पत्ति अनेक प्रकारके सुख भोगते हुए बड़े आनन्दसे वहाँ रहते थे और नये-नये उपायोंसे प्रजाका पालन करते थे। अब यहां पर यह प्रकट कर देना उचित ही होगा कि वज्रनाभि चक्रवर्ती जो कि सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए थे, कुछ समय बाद वहाँसे चयकर इन्हीं राज-दम्पत्तिके पुत्र होंगे और भगवान श्री वृषभनाथ नामसे प्रसिद्ध होंगे। ये भगवान श्री वृषभनाथ ही इस युगके प्रथम तीर्थंकर कहलावेंगे।

भगवान श्री आदिनाथका गर्भ कल्याणक

श्रितः श्रेयोऽप्युदासीने यत्त्वैंययेवाऽश्नुते परः।
क्षतं भूयो मदाहने तत्त्वमेवार्चितेश्वरः।

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे प्रभो! यद्यपि आप उदासीन हैं–रागद्वेषसे रहित हैं—तथापि आपकी सेवा करनेवाले—विशुद्ध चित्तमें आपका ध्यान करनेवाले–पुरुष कल्याणको ही प्राप्त होते हैं और अहंकारसे पूर्ण अथवा रागद्वेषसे पूर्ण अन्य कुदेवादिककी सेवा करनेवाले पुरुष अकल्याणको प्राप्त होते हैं। अतः आप ही पूज्य ईश्वर हैं।

सर्वार्थसिद्धिमें ज्यों-ज्यों वज्रनाभि अहमिन्द्रकी आयु कम होती जाती थी, त्यों-त्यों तीनों लोकोंमें आनन्द बढ़ता जाता था। यहाँ तक कि वहाँ उनकी आयु केवल छः माह की बाकी रह गयी; तब इन्द्रकी आज्ञासे धनपति कुबेरने राजधानी अयोध्याके समीप ही एक दूसरी अयोध्या नगरी बनाई। वह नगरी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। नगरीके बाहर चारों ओर अगाध जलसे भरी हुई सुन्दर परिखाका पानी तपे हुए सुवर्णकी भांति जान पड़ता था। उसके बाद सुवर्णमय कोट बना हुआ था। उस कोटकी शिखरे बहुत ऊँची थीं। कोटके चारों ओर चार गोपुर बने हुए थे। जिनके गगनचुम्बी शिखरों पर मणिमय कलश ऐसे मालूम होते थे, मानों उदयाचलके शिखरों पर सूर्यके बिम्ब ही विराजमान हों। उस नगरीमें जगह-जगह विशाल जिन-मन्दिर बने हुए थे, जिनमें जिनेन्द्रदेवकी रत्नमयी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गई थीं। कहीं स्वच्छ जलसे भरे हुए तालाब दिखाई देते थे। उन तालाबोंमें कमल फूल रहे थे और उन पर मधुके मत्त हुए भौंरे मनोहर शब्द करते थे। कहीं अगाध जलसे भरी हुई वापिकाएँ नजर आती थीं, जिनके रत्न-खचित किनारों पर हंस, सारस आदि पक्षी क्रीड़ा करते थे। कहीं आम, नींबू, अमरूद, अनार, जम्बीर आदिके पेड़ोंसे सुशोभित बड़े-बड़े बगीचे

बनाये गये थे, जिनमें तरह-तरहके फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी। कहीं अच्छे-अच्छे बाजार बने हुए थे; जिनमें हीरा, मोती, पन्ना आदि मणियोंके ढेर लगाये जाते थे। कहीं सेठ साहुकारोंके बड़े-बड़े महल बने हुए थे, जिनके शिखरों पर कई तरहके रत्न जड़े हुए थे। किसी सुन्दर जगहमें राज-भवन बने हुए थे, जिनके ऊँचे शिखर आकाशके अन्तस्थलको भेदते हुए आगे चले गये थे और कहीं निर्बाध स्थानोंमें विस्तृत विद्यालय बनाये गये थे, जिनकी दीवालों पर शिक्षाप्रद चित्र टंगे हुए थे। कविवर अर्हद्दासने ठीक ही लिखा है—जिसके बननेमें इन्द्र सूत्रधार हो और देव लोग स्वयं कार्य करनेवाले हों, उस अयोध्या नगरीका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है? सचमुच उस नवनिर्मित अयोध्याके सामने इन्द्रकी अमरावती बहुत ही निकृष्ट मालूम होती थी।

एक दिन शुभ-मुहूर्तमें सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने सब देवोंके साथ आकर उस नवीन नगरीमें महाराजा नाभिराजा और मरुदेवीका राज्याभिषेक कर उन्हें राज-भवनमें ठहराया। उसी दिन सब अयोध्यावासियोंको भी नवीन अयोध्यामें प्रवेश कराया, जिससे उसकी आभा बहुत ही विशिष्ट हो गयी थी। इसके बाद वे देव लोग कई तरहके कौतुक दिखला कर अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

जब तक मनुष्य भोग लालसाओंमें लीन रहते हैं, तब तक उनके हृदयमें धर्मकी प्रभावना दृढ़ नहीं होने पाती; पर जैसे-जैसे भोग लालसाएँ घटती जाती हैं, वैसे ही उनमें धर्मकी भावना दृढ़ होती जाती है। इस भारत वसुन्धरा पर जबसे कर्मयुगका प्रारम्भ हुआ, तबसे लोगोंके हृदय भोग-लालसाओंसे बहुत कुछ विरक्त हो चुके थे; इसलिये वह समय उनके हृदयोंमें धर्मका बीजारोपण करनेके लिये सर्वथा योग्य था। उस समय संसारको ऐसे देवदूतकी आवश्यकता थी जो सृष्टिके विश्रृङ्खल, अव्यवस्थित लोगोंको श्रृंखलाबद्ध व्यवस्थित बनावे, उन्हें कर्तव्यका ज्ञान करावे और उनके सुकोमल हृदयमें उसके लिये बीज रोपन करें। वह महान कार्य किसी साधारण मनुष्यसे नहीं हो सकता था, उसके लिये तो किसी ऐसे महात्माकी आवश्यकता थी, जिसका व्यक्तित्व बहुत ही बढ़ा-चढ़ा हो, जिसका हृदय अत्यन्त निर्मल और उदार हो। उस समय वज्रनाभि चक्रवर्तीका जीव जो कि सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पद पर आसीन था, इस महान कार्यके लिये उद्यत हुआ। देवताओंने उसका सहर्ष अभिवादन किया। यद्यपि उसे

अभी भारत-भू पर आनेके लिये कुछ समय बाकी था, तथापि उसके पुण्य-परमाणु सब ओर फैल गये थे। सबसे पहिले देवोंने उस भव्यात्माके स्वागतके लिये भव्य नगरीका निर्माण किया और फिर उसमें प्रतिदिन दिनमें तीन-तीन बार करोंड़ों रत्नोंकी वर्षा की।

भगवान आदिनाथका गर्भकल्याणक

एक दिन महारानी मरुदेवी गंगाजलके समान स्वच्छ वस्त्रसे शोभित शैय्या पर सुखकी नींद सो रही थी। जब रात पूर्ण हुआ चाहती थी, तब उसने आकाशमें नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे— १ ऐरावत हाथी, २ सफेद बैल, ३ गरजता हुआ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएँ, ६ चन्द्रमण्डल, ७ सूर्य-बिम्ब, ८ सुवर्णके दो कलश, ९ तालाबमें खेलती हुई दो मछलियाँ, १० निर्मल जलसे भरा हुआ सरोवर, ११ लहराता हुआ समुद्र, १२ रत्नोंसे जड़ा हुआ सिंहासन, १३ देवोंका विमान, १४ नागेन्द्र भवन, १५ रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि। स्वप्न देखनेके बाद उसने अपने मुंहमें प्रवेश करते हुए कुन्द पुष्पके समान श्वेत वर्णवाला एक बैल देखा। इतनेमें रात पूर्ण हो गई, पूर्व दिशामें लाली छा गई और राज-मन्दिरमें वादिंत्रोंकी मंगल-ध्वनि होने लगी। वादिंत्रोंकी ध्वनि तथा बन्दीजनोंके स्तुति भरे वचनोंसे महारानी मरुदेवीकी नींद खुल गई। वह पञ्च परमेष्ठीका स्मरण करती हुई शैय्यासे उठी, तो अभूतपूर्व स्वप्नोंका स्मरण कर आश्चर्य-सागरमें निमग्न हो गई। जब उन्हें बहुत कुछ सोच-विचार करने पर भी स्वप्नोंके फलका पता न चला, तब शीघ्र ही नहा-धोकर प्रस्तुत हुई और बहुमूल्य

वस्त्राभूषण पहिन कर सभा-मण्डपकी ओर गई। महाराज नाभिराजने हृदयवल्लभा मरुदेवीका यथोचित सत्कार कर उन्हें योग्य आसन पर बैठाया और मधुर वचनोंसे कुशल-प्रश्न पूछ चूकनेके बाद उसके राज-सभामें आनेका कारण पूछा। मरुदेवीने विनयपूर्वक रातमें देखे हुए स्वप्न राजा नाभिराजसे कहे और उनके फल जाननेकी इच्छा प्रकट की। राजा नाभिराजको अवधिज्ञान था; इसलिये सुनते ही वे स्वप्नोंका फल जान गये थे। जब मरुदेवी अपनी जिज्ञासा प्रकट कर चुप हो रही, तब महाराजा नाभिराजने बोलना आरम्भ किया। बोलते समय उनके उज्वल दाँतोंकी किरणें मरुदेवीके वक्षस्थल पर पड़ रही थी, जिनसे ऐसा मालूम होता था, मानों महाराज नाभिराज अपनी प्रियतमाको मोतियोंका हार ही पहिना रहे हों। उन्होंने कहा—'देवी!

ऐरावत हाथीके देखनेसे तुम्हारे एक अत्यन्त उत्कृष्ट पुत्र होगा,
बैलके देखनेसे वह समस्त संसारका अधिपति होगा,
सिंहके देखनेसे वह अत्यन्त पराक्रमी होगा,
लक्ष्मीके देखनेसे अत्यन्त वैभवशाली होगा,
दो मालाओंके देखनेसे धर्म-तीर्थका कर्त्ता होगा,
पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे समस्त प्राणियोंको आनन्द देनेवाला होगा,
सूर्यको देखनेसे तेजस्वी होगा,
सोनेके कलश देखनेसे निधियोंका स्वामी होगा,
मछलियोंके देखनेसे अनन्त सुखी होगा,
सरोवर देखनेसे उत्तम लक्षणोंसे भूषित होगा,
समुद्रके देखनेसे सर्वदर्शी होगा,
सिंहासनके देखनेसे स्थिर साम्राज्यवान् होगा,
देव-विमान देखनेसे वह स्वर्गसे आवेगा,
नागेन्द्रका भवन देखनेसे अवधिज्ञानी होगा,
रत्नोंकी राशि देखनेसे गुणोंकी खानि होगा,
निर्धूम अग्निके देखनेसे वह कर्मरूपी ईंधनको जलानेवाला होगा

तथा स्वप्नके देखनेके बाद जो आपने मुंहमें प्रवेश करते हुए सफेद बैलको देखा है, उससे मालूम होता है कि तुम्हारे गर्भमें किसी देवने अवतार लिया है।'

जब नाभिराजा मरुदेवीके स्वप्नोंका फल बता रहे थे, तब देवोंके आसन अकस्मात् कम्पायमान हुए, जिससे उन्हें भगवान वृषभनाथके गर्भारोहणका निश्चय हो गया। इन्द्रकी आज्ञानुसार दिक्कुमारियाँ तथा श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि देवियाँ जिन-माता महारानी मरुदेवीकी सेवाके लिये उपस्थित हो गई। इन्द्र आदि समस्त देवोंने आकर अयोध्यापुरीमें खूब उत्सव किया और वस्त्र-आभूषण आदिसे राजा नाभिराज और मरुदेवीका खूब सत्कार किया। जो रत्नोंकी धारा गर्भाधानके छह माह पहिलेसे बरसती थी, वह गर्भाधानके दिनोंमें भी वैसी ही बरसती रही। इस तरह आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें वज्रनाभि अहमिन्द्रने सर्वार्थसिद्धिसे चयकर महादेवी मरुदेवीके गर्भमें स्थान पाया। जब भगवान माताके गर्भमें आये थे, तब तीसरे सुषमा-दुःखमा कालके चौरासी लाख पूर्व तथा तीन वर्ष साढ़े आठ माह[1] बाकी थे।

मरुदेवीकी सेवाके लिये जो दिक्कुमारियाँ श्री, ह्रीं आदि देवियाँ आई थीं, उन्होंने सबसे पहिले स्वर्गलोकसे लाई हुई दिव्य औषधियोंसे उनका गर्भ-शोधन किया और फिर निरन्तर गर्भकी रक्षा तथा उसके पोषणमें दत्तचित्त रहने लगी। वे देवियाँ मरुदेवीकी हर प्रकारसे सेवा करने लगीं—कोई शरीरमें तैलका मर्दन करती थी, कोई उबटन लगाती थी, कोई नहलाती थी, कोई चन्दन, कपूर, कस्तुरी आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेप लगाती थी, कोई बालोंको सम्भाल कर उन्हें सुगन्धित फूलोंसे सजाती थी, कोई उत्तम वस्त्र पहनाती थी, कोई कंकण, केयुर, मंजीर आदि अनेक प्रकारके आभूषण पहिनाती थी, कोई अमृतके समान अत्यन्त मधुर भोजन कराती थी, कोई शिर पर छत्र लगाती थी, कोई उत्तम ताम्बूलके बीड़े समर्पण करती थी, कोई रत्नोंके चूर्णसे चौक पूरती थी, कोई तलवार लेकर पहरा देती थी, कोई आँगन बुहारती थी और कोई मनोहर कविताएँ, कहानियाँ, पहेलियों और समस्याओंके समाधान द्वारा उनका चित्त अनुरंजित करती थी। इस तरह देवियोंके साथ नृत्य-गीत आदि विनोदोंके द्वारा मरुदेवीका समय सुखसे बीतता था। उस समयकी विचित्र बात यह थी कि गर्भके दिन तो क्रमशः बीतते जाते थे, पर उनके शरीरमें गर्भके कोई भी चिह्न प्रकट नहीं हुए थे। न पेट बढ़ा था, न मुखकी कान्ति फीकी पड़ी थी, न आँखों और स्तनोंमें ही कोई परिवर्तन हुआ था।

---

१. पाठान्तर : ५० लाख क्रोड़ सागर + १२ लाख पूर्व (त्रि. प.)

भगवान श्री सीमंधरनाथके समवसरणमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव व गुणियल राजकुमार

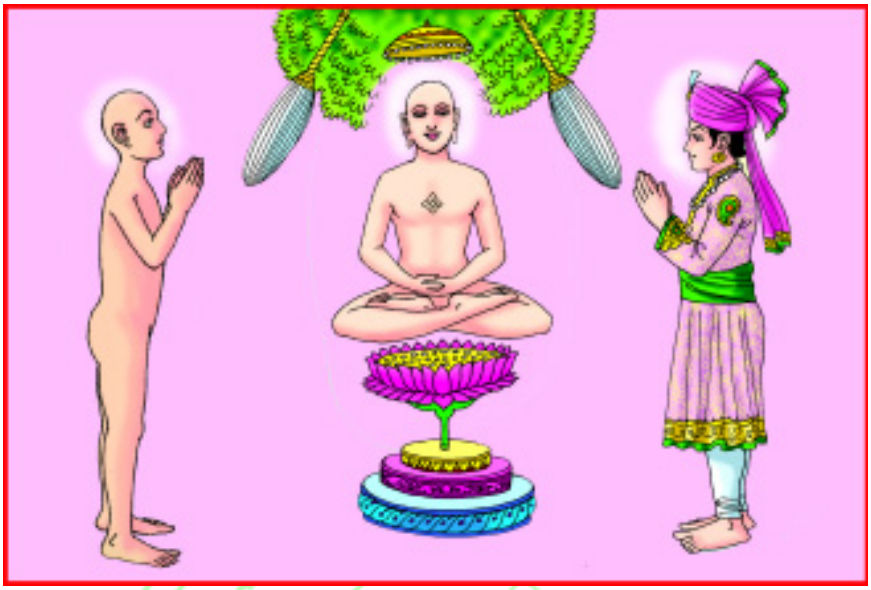

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रस्थ पुष्कलावती विजयमें वर्तमान–विहरमान, समवसरण-गन्धकूटी पर बिराजमान, सर्वज्ञ वीतराग, अर्हन्त परमात्मा, तीर्थंकर, परम देवाधिदेव, परम पूज्य श्री सीमंधर भगवान, तथा समवसरणमें उन्हें अत्यंत भक्तिभाव सह वंदना करके उनके दिव्य उपदेशामृतका प्रत्यक्ष पान करते जम्बू-भरतक्षेत्रसे सदेह विदेहगमन प्राप्त महामुनीन्द्र श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव व उसी भांति विदेहक्षेत्रस्थ धर्मानुरागी गुणियल राजकुमार।

(उस समय भगवानकी वाणीमें आया कि ये राजकुमार अगले भवमें जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्रमें इन कुन्दकुन्दाचार्यदेवका शासन प्रवर्तायेगा व ये ही राजकुमार भविष्यमें धातकीखण्डके पूर्व विदेहमें सूर्यकीर्ति व सर्वांगस्वामी ऐसे दो नामवाले तीर्थंकर होंगे।)

(विस्तृत कथा हेतु देखे जैन पौराणिक लघुकथा भाग-५, पृ. ११५)

भगवान श्री आदिनाथका जन्मकल्याणक

भासते विभुताऽस्तोना ना स्तोता भुवि ते सभाः।
याः श्रिताः स्तुत! गीत्या नुनुत्या गीतस्तुताःश्रिया॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे स्तुत्य! आपकी स्तुति करनेवाला पुरुष पृथ्वी पर उन समवसरण-सभाओंको पाकर अत्यन्त शोभित होता है। जो सभाएँ अष्ट महाप्रतिहार्यरूप लक्ष्मीसे शोभित हैं, संगीतमय स्तोत्रोंसे जिनका वर्णन किया जाता है, श्रेष्ठ पुरुषोंके नमस्कारसे जो पूज्य हैं और जिन्होंने अपने वैभवसे अन्य सभाओंको तिरस्कृत कर दिया है।

जब धीरे-धीरे भगवान श्री आदिनाथके गर्भका समय पूरा हो गया, तब चैत्र कृष्ण नवमीके दिन प्रातःकालके समय उत्तम मुहूर्तमें मरुदेवीने पुत्र-रत्न प्रसव किया। उस समय वह पुत्र सूर्यके समान मालूम होता था, क्योंकि जिस प्रकार सूर्य उदयाचलसे प्राची दिशामें प्रकट होता है, उसी प्रकार वह भी महाराज नाभिराजसे महारानी मरुदेवीके 'जिन'सूर्य प्रकट हुआ था। जिस तरह सूर्य किरणोंसे प्रकाशमान होता है तथा अन्धकार नष्ट करता है, उसी तरह वह 'जिन'सूर्य भी मति, श्रुत, अवधि–ज्ञानरूपी किरणोंसे चमक रहा था और अज्ञान-तिमिरको नष्ट करता था। तीर्थंकररूपी बाल-सूर्यको देखकर देवांगनाओंके नयन-कमल विकसित हो गये थे और उनसे हर्षाश्रु झरने लगे थे। बालककी अनुपम प्रभासे समस्त प्रसूति-गृह अन्धकार रहित हो गया था; इसलिये देवियोंने जो दीपक जलाये थे, वे केवल मंगलके लिये थे। उस समय तीनों लोकोंमें उल्लास छा गया था। कुछ क्षणोंके लिये नारकी भी सुखी हो गये थे। दिशाएँ निर्मल हो गयीं थीं। आकाश निर्मेघ हो गया था, नदी, तालाब आदिका पानी स्वच्छ हो गया था, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गई थी, मन्द, सुगन्धित पवन बह रहा था। वनमें

एक साथ छहों ऋतुओंकी शोभा प्रकट हो गयी थी। घर घर उत्सव मनाये जा रहे थे, जगह-जगह पर लय और तालके साथ सुन्दर संगीत हो रहे थे, मृदंग, वीणा आदि वादित्रोंके मधुर शब्द समस्त गगनमें गूंज रहे थे, मकानों की छतों पर कई रंगकी पताकाएँ फहराई गई थीं, सड़कों पर सुगन्धित जल सींच कर चन्दन छिड़का गया था और उत्तम-उत्तम फूल बिखेरे गये थे, आकाशसे तरह-तरहके रत्न, मन्दार, सुन्दरमेरु, पारिजात, सन्तान आदि कल्पवृक्षोंसे फूल बरस रहे थे। इन सबसे अयोध्यापुरीकी शोभा बड़ी ही अनुपम मालूम होती थी। उस समय वहां ऐसा कोई मनुष्य नहीं था, जिसका हृदय बालक तीर्थंकरका जन्म सुनकर आनन्दसे उमड़ न रहा हो। देव, नारकी, तिर्यंच, मानव आदि सभी प्राणियोंके ह्दयोंमें आनन्दसागर उमड़ रहा था।

बालकके पुण्य प्रतापसे भवनवासी देवोंके भवनमें बिना बजाए ही शङ्ख बजने लगे थे। व्यंतरोंके भवनोंमें भेरीका शब्द होने लगा था। ज्योतिषियोंके विमान सिंहनादसे प्रतिध्वनित हो उठे थे और कल्पवासी देवोंके विमानोमें घण्टोंका सुन्दर शब्द होने लगा था। जगद्गुरु जिनेन्द्रदेवके सामने किसी दूसरेका राज्य सिंहासन सुदृढ़ नहीं रह सकता, मानो यह प्रकट करते हुए ही देवोंके आसन हिल गये थे। जब इन्द्र अपनी हजार आँखोंसे भी आसन हिलनेका कारण न जान सका, तब उसने अवधिज्ञानरूपी लोचन खोला, जिससे वे शीघ्र ही समझ गये कि अयोध्यापुरीमें महाराज नाभिराजके घर प्रथम तीर्थंकरका जन्म हुआ है। यह जानकर बाल तीर्थंकरको परोक्ष नमस्कार किया।

फिर भगवानके जन्माभिषेक महोत्सवमें अनुगमन करनेके लिये प्रस्थान भेरी बजवाई। भेरीका गम्भीर शब्द, मानो चिरकालसे सोये हुए समीचीन-धर्मको जगाता हुआ तीनों लोकमें फैल गया था; प्रस्थान-भेरीकी ध्वनि सुन समस्त देव-सेनाएँ अपने-अपने आवासोंसे निकलकर स्वर्गके गोपुर-द्वार पर इन्द्रकी प्रतिक्षा करने लगे। सौधर्म स्वर्गका इन्द्र भी इन्द्राणीके साथ ऐरावत हाथी पर बैठकर समस्त देव सेनाओंके साथ अयोध्यापुरीकी ओर चला। रास्तेमें अनेक सुर-नर्तकियाँ नृत्य करती जाती थीं। सरस्वती वीणा बजाती थी, गन्धर्व गाते थे और भरताचार्य नृत्यकी व्यवस्था कर रहे थे। उस समय परस्पर घर्षणसे टूट-टूट कर नीचे गिरते हुए मालाके मणि ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों ऐरावत हाथियोंके पाँव-सञ्चारसे चूर्ण हुए नक्षत्रोंके टुकड़े ही हों। धीरे-धीरे वह

ऐरावत हाथी पर आदि जिनेन्द्र मेरु पर्वतकी ओर

देव-सेना आकाशसे नीचे उतरी और अयोध्यापुरीकी तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उसे चारों ओरसे घेरकर आकाशमें स्थिर हो गई।

इन्द्र-इन्द्राणी आदि कुछ प्रमुख देव राजा नाभिराजके भवन पर पहुँचे और तीन प्रदक्षिणा देकर उसके भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ राज-मन्दिरकी अनूठी शोभा देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ। बाल तीर्थंकरको लानेके लिये इन्द्रने इन्द्राणीको प्रसूतिगृहमें भेजा और स्वयं आंगनमें खड़ा रहा। वहाँ जब शची इन्द्राणीकी दृष्टि माताके पास क्रीड़ा करते हुए जिन-बालक पर पड़ी, तब उसका हृदय आनन्दसे भर गया। इन्द्राणीने उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर वह मरुदेवीको मायामयी निद्रासे अचेत कर उनके समीप माया-निर्मित एक बालकको सुलाकर जिनबालकको बाहर ले आई। उस समय उनके आगे-आगे दिक्कुमारियाँ अष्ट मंगल लिये हुए चल रही थीं, कोई जय-जय शब्द कर रही थी और कोई मनोहर मंगल-गीत गा रही थीं। इन्द्राणीने जिन-बालकको ले जाकर इन्द्रको सौंप दिया। कहते हैं कि इन्द्र दो आँखोंसे बालकका सौंदर्य देखकर संतुष्ट नहीं हो सका था; इसलिये उसने उसी समय विक्रियासे हजार आँखें बना ली थी। पर कौन कह सकता है कि वह हजार आँखोंसे भी उन्हें देखकर संतुष्ट हुआ होगा? उस समय देव-सेनामें जय-जयकार शब्दके सिवाय और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता था।

सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर बाल-तीर्थंकरको गोदमें ले कर बैठ गये। उस समय बालक वृषभनाथके सिर पर ऐशान स्वर्गका इन्द्र धवल छत्र लगाये हुए था। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गके इन्द्र दोनों चमर ढोर रहे थे तथा अवशिष्ट इन्द्र और देव जय-जयकार कर रहे थे। इसके अनन्तर वह विशाल सेना आकाश-मार्गसे मेरु पर्वतकी ओर चली और धीरे-धीरे चल कर निन्यानवे हजार योजन ऊँचे मेरु पर्वत पर पहुँच गई। मेरु पर्वतके शिखर पर पाण्डुक वनमें देव-सेनाको ठहराकर देवराज इन्द्र उस वनके ईशान दिशाकी ओर गया। वहाँ उसकी दृष्टि पाण्डुक-शिला पर पड़ी। वह शिला स्फटिकमणियोंसे बनी हुई थी, देखनेमें अर्धचन्द्रमा-सी मालूम होती थी, यह शिला पचास योजन चौड़ी सौ योजन लम्बी और आठ योजन ऊँची थी। उसके बीच भागमें एक रत्न-खचित सोनेका सिंहासन रक्खा था और उस सिंहासनके दोनों ओर दो

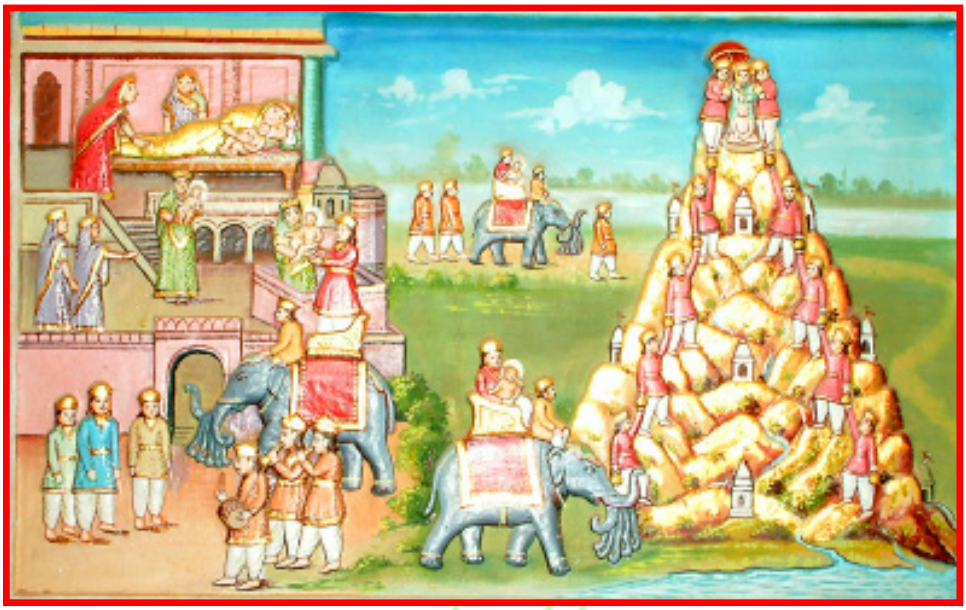

सिंहासन और रक्खे हुए थे। इन्द्रने वहाँ पर वस्त्रांग जातिके कल्पवृक्षोंसे प्राप्त हुए वस्त्रोंसे एक सुन्दर मण्डप तैयार करवा कर उसे अनेक तरहके रत्न और चित्रोंसे सजवाया था। इसके अनन्तर इन्द्रने जिन-बालकको ऐरावत हाथीके गण्डस्थलसे उतारकर बीचके सिंहासन पर बिराजमान कर दिया तथा बगलके दोनों आसनों पर सौधर्म और ऐशान स्वर्गके इन्द्र बैठे। इन दोनों इन्द्रोंके आसनसे लेकर क्षीर-समुद्र तक देवोंकी पंक्तियाँ बनी हुई थी, जो वहाँसे जलसे भरे कलशोंको हाथो-हाथ इन्द्रोंके पास पहुँचा रही थीं। दोनों इन्द्रोंने विक्रियासे हजार-हजार हाथ बना लिये थे; इसलिये उन्होंने एक साथ हजार कलशोंसे बालकका अभिषेक किया। जिन-बालकमें जन्मसे ही अतुल्य बल था; इसलिये वे उस विशाल प्रचण्ड़ जलधारासे रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुए थे। यदि वह प्रचण्ड़ जल धारा किसी वज्रमय पर्वत पर पड़ती, तो वह भी खण्ड़-खण्ड़ हो जाता, पर वह प्रचण्ड़ जल-धारा जिनेन्द्र बालक पर फूलोंकी कलिकासे भी लघु मालूम पड़ती थी।

जब अभिषेकका कार्य पूरा हो गया, तब उत्तम वस्त्रसे जिन-बालकको पोंछकर इन्द्राणीने उन्हें तरह-तरहके आभूषण पहनाये। मनोहर शब्द और अर्थसे भरे हुए अनेक स्तोत्रोंके द्वारा देवराजने उनकी खूब स्तुति की। भक्तिसे भरी हुई देव-नर्तकियोंने सुन्दर

अभिनय-नृत्य किया और समस्त देवोंने उनका जन्म-कल्याणक देखकर अपनी देव-पर्यायको सफल माना था। 'ये बालक वृष (धर्म)से शोभायमान है'—ऐसा देखकर इन्द्रने उनका नाम 'वृषभनाथ' रक्खा। इस तरह इन्द्र आदि देवमण्ड़ल मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव समाप्त कर पुनः अयोध्याको वापिस आये और वहाँ उन्होंने जिन-बालकको माताकी गोदमें देकर अभिषेक-विधिके सब समाचार सुनाये।

इसे सुनकर उनके माता-पिता आदि परिवारके लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। उसी समय इन्द्रने 'आनन्दोद्यत' नामका एक नाटक किया, जिसमें उसने अपनी अनूठी नृत्य-कलाके द्वारा समस्त दर्शकोंके चित्तको मोहित कर लिया था। फिर विक्रियासे भगवान वृषभदेवके महाबल आदि दश पूर्व-भवोका दृश्य-परिचय कराया। महाराज नाभिराजने भी दिल खोलकर पुत्रोत्पत्तिके उपलक्ष्यमें अनेक उत्सव किये थे। उस समय अयोध्यापुरीकी शोभा एवं सजावटके सामने कुबेरकी अलकापुरी और इन्द्रकी अमरावती भी बहुत फीकी मालूम होती थी।

जन्माभिषेकका महोत्सव पूरा कर देव और देवेन्द्र अपने-अपने स्थानोंको चले गये। जाते समय इन्द्र नाभिराजके भवन पर, भगवानके लालन-पालनमें चतुर कुछ देव-कुमार और देव-कुमारियोंको छोड़ गया था। वे देव-कुमार विक्रियासे अनेक रूप बनाकर भगवानका मनोरञ्जन करते थे और देव-कुमारियाँ तरह-तरहके उत्तम पदार्थोंसे उनका लालन-पालन करती थी। कहते हैं कि इन्द्रने भगवानके हाथके अंगुठेमें अमृत छोड़ दिया था, जिसे चूस-चूस कर वे बड़े हुए थे, उन्हें माताका दूध पीनेकी आवश्यकता नहीं हुई थी। बाल-भगवान अपनी लीलाओंसे सभीका मन हर्षित करते थे। उस समय ऐसा कौन होगा, जो बालककी मन्द मुस्कान, तोतली बोली और मनोहर चेष्टाओंसे प्रमुदित न हो जाता हो? उन्हें जन्मसे ही मति, श्रुत और अवधिज्ञान था। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उन्हें किसी गुरुसे विद्या सिखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। वे अपने आप ही समस्त विद्याओं और कलाओंमें कुशल हो गये थे। उनके अद्भुत पाण्ड़ित्यके सामने अच्छे-अच्छे विद्वानोंको अपना अभिमान छोड़ देना पड़ता था।

भगवान श्री आदिनाथ तपकल्याणक

स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतस्तु ते।
चिराय भवते पीडयमहोगुरुवेऽयुचे।।
स्वयं शमयितुं नाशं विदित्वा सन्नतः स्तुते।
चिराय भवतेपीड्य महोरुगुरवे शुचे।।

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे स्तुत्य! हे दिव्यध्वनिरूप किरणोंसे शोभायमान सूर्य! जो ज्ञानवान पुरुष, विनाशको नष्ट करनेके लिये–अजर-अमर पद पानेके उद्देश्यसे, अविनाशी–शोकरहित एवं निर्बाध-प्रताप और केवलज्ञानसे सम्पन्न आपके लिये सम्यक्प्रकार शुद्ध भावोंसे नमस्कार करता है तथा सब कर्मोंको नष्ट करनेवाले आपके स्तवनमें तल्लीन होता है वह दुःखोंको पाकर भी अन्तमें पुण्यस्वरूप-अविनाशी परमसुखको प्राप्त होता है।

एक दिन भगवान वृषभदेव राज-सभामें सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए थे। उनके आसपासमें और भी अनेक राजा, सामन्त, पुरोहित, मन्त्री आदि बैठे हुए थे। इतनेमें उपासना करनेके लिये अनेक देव-देवियोंके साथ सौधर्म स्वर्गका इन्द्र वहाँ आया। आते समय इन्द्र सोच रहा था कि भगवान वृषभदेव अब तक सामन्य मनुष्योंकी भांति विषय-वासनामें फंसे हुए हैं। जब तक ये विषय-वासनासे हटकर मुनि-मार्गमें पदार्पण नहीं करेंगे तब तक संसारका कल्याण होना मुश्किल है। इसलिये किसी भी उपायसे आज इन्हें विषय-भोगोंसे विरक्त कर देनेका उद्यम करना चाहिये।

यह सोचकर उसने राजसभामें एक अप्सरा नीलाञ्जनाको (जिसकी शेष आयु अत्यन्त अल्प रह गई थी) नृत्य करनेके लिये खड़ा किया। जब निलाञ्जना नृत्य करते-

राजा आदिनाथके दरबारमें निलांजनाका नृत्य

करते क्षणभरमें बिजलीकी भांति विलीन हो गई, तब इन्द्रने रसभंग न हो इसलिये, उसीके समान रूप और वेष-भूषावाली दूसरी अप्सराको नृत्य-स्थलमें खड़ा कर दिया। वह भी नीलाञ्जनाकी तरह हाव-भावपूर्वक मनोहर अभिनय करने लगी साधारण जनको इस परिवर्तनका कुछ भी पता नहीं लगा, पर भगवान वृषभदेवकी दिव्य दृष्टिसे यह रहस्य छिपा न रह सका।

वे नीलाञ्जनाके अदृश्य होते ही संसारसे एकदम उदासीन हो गये। इन्द्रने अपनी चतुराईसे जो दूसरी अप्सरा खड़ी की थी, उसका भगवान वृषभदेव पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। वे सोचने लगे—'यह शरीर वायुके वेगसे कम्पित दीप-शिखाकी भाँति नश्वर है। यह लक्ष्मी बिजलीकी चमककी तरह क्षणभंगुर है, यौवन संध्याकी लालीके समान देखते-देखते नष्ट हो जाता है और यह विषय-सुख समुद्रकी लहरोंके समान चञ्चल है। इन्द्रकी आज्ञासे नृत्य करती हुई यह कमलनयनी देवी भी जब, आयु क्षीण हो जाने पर, सत्यको प्राप्त हुई है, तब दूसरा और कौन संसारमें अमर होगा? देवोंके सामने मनुष्योंकी आयु ही कितनी है? यह लक्ष्मी विषराशिसे उत्पन्न हुई है; तब भी लोग

इसे अमृत-सागरसे उत्पन्न हुई बतलाते हैं। जो शरीर इस आत्माके साथ दूध और पानीकी तरह मिला हुआ है—सुख-दुःखमें साथ देता है, वह भी जब समय पा कर आत्मासे पृथक् हो जाता है, तब बिलकुल अलग रहनेवाली स्त्री, पुत्र, पुत्री धन-सम्पत्ति आदिमें कैसे बुद्धि स्थिर की जा सकती है? यह प्राणी पापके वश नरकगतिमें जाता है, वहाँ सागरों वर्ष पर्यन्त अनेक तरहके दुःख भोगता है; वहाँसे निकल तिर्यंचगतिमें शीत-उष्ण, भूख-प्यास आदिके विविध दुःख उठाता है। कदाचित् सौभाग्यसे मनुष्य भी हुआ तो दरिद्रता, रोग आदिसे दुःखी हो कर हमेशा संक्लेशका अनुभव करता है और कभी कुछ पुण्योदयसे देव भी हुआ, तो वहाँ भी अनेक मानसिक दुःखोंसे दुःखी होता रहता है। इस तरह चारों गतियोंमें कहीं भी सुखका ठिकाना नहीं है। सच्चा सुख मोक्षमें ही प्राप्त हो सकता है और वह मोक्ष मनुष्य पर्यायसे ही प्राप्त किया जा सकता है। इस मनुष्य पर्यायको पाकर यदि मैंने आत्म-कल्याणके लिये प्रयत्न नहीं किया, तब मुझसे मूर्ख और कौन होगा?

इधर भगवान वृषभदेव अपने हृदयमें ऐसा विचार कर रहे थे, उधर ब्रह्मलोक (पाँचवें स्वर्ग)में रहनेवाले लौकान्तिक देवोंके आसन कम्पायमान हुए, जिससे वे भगवान आदिनाथका हृदय विषयोंसे विरक्त समझ शीघ्र ही उनके पास आये और तरह-तरहके वचनोंसे स्तुति कर उनके विचारोंका समर्थन करने लगे। देवोंके वचन सुनकर उनकी वैराग्य-धारा अत्यन्त वेगवती हो गई। अब उन्हें राज्य-सभामें, गगन-चुम्बी महलोंमें, स्वर्गपुरीको जीतनेवाली अयोध्यापुरीमें और स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदिमें किंचित् भी आनन्द नहीं आता था। जब लौकान्तिक देव अपना कार्य समाप्त कर हंसोंकी भाँति आकाशमें उड़ गये, तब इन्द्र-प्रतीन्द्र आदि चारों निकायोंके देवोंने अयोध्यापुरी आ कर जय-घोषणाके साथ भगवान वृषभदेवका क्षीरसागरके जलसे अभिषेक किया।

अभिषेकके बादमें तप-कल्याणककी विधि प्रारम्भ की। इसी बीचमें भगवान वृषभदेवने ज्येष्ठ पुत्र भरतको राजगद्दी दे कर बाहुबलीको युवराज बना दिया था, जिससे वे राज्य-कार्यकी ओरसे बिलकुल निराकुल हो गये। उस समय तप-कल्याणक और राज्याभिषेक इन दो महान उत्सवोंसे नर-नारियों और देव-देवियोंके हृदयमें ही क्या, प्राणी मात्रके हृदयमें आनन्द-सागर लहरा रहा था। त्रिभुवनपति भगवान वृषभनाथ महाराज

नाभिराज और महारानी मरुदेवी आदिसे आज्ञा लेकर वनमें जानेके लिये देव-निर्मित पालकी पर सवार हुए। वह पालकी खूब सजाई गई थी, उसके ऊपर कई रङ्गोंकी पताकाएँ लगी हुई थी और चारों ओर बंधी हुई मणियोंकी छोटी-छोटी घण्टियाँ झुन-झुन करती थीं। सबसे पहिले बड़े-बड़े भूमिगोचरी राजाओंने पालकीको अपने कन्धे पर रखकर जमीन पर सात कदम चले, फिर विद्याधर राजाओंने अपने कन्धों पर रखकर सात कदम आकाशमें चले, इसके अनन्तर प्रेमसे भरे हुए सुर, असुर उस पालकीको अपने कन्धों पर रखकर आकाश-मार्गसे चले।

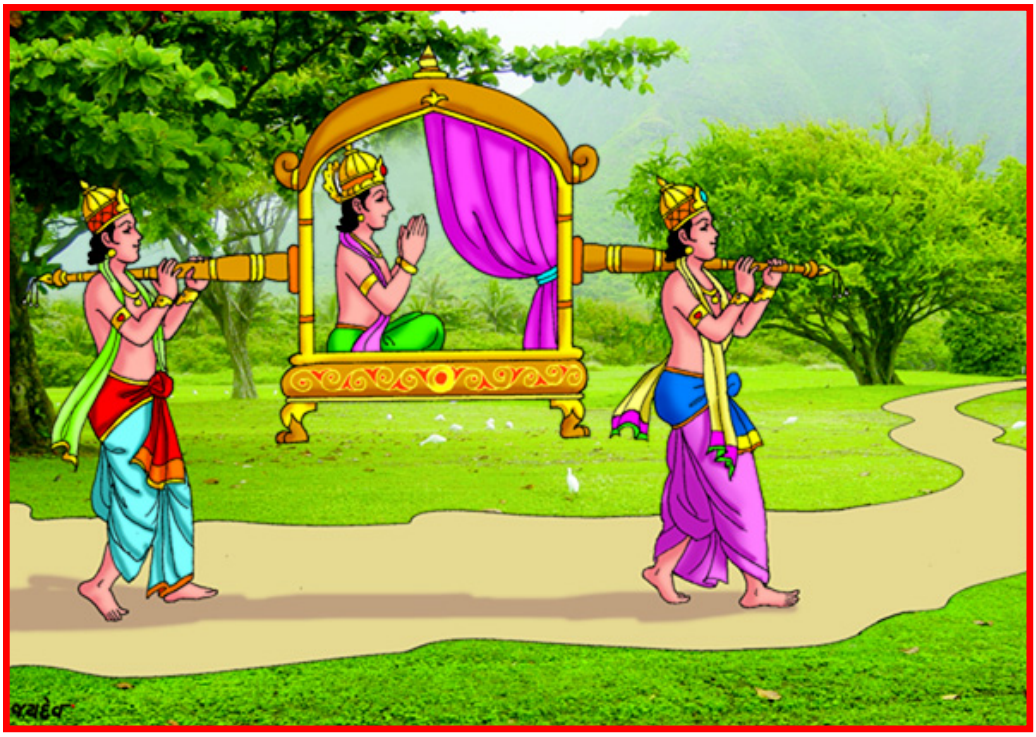

राजा आदिनाथका दीक्षा हेतु वनगमन

उस समय देव-देवेन्द्र 'जय-जय' शब्द करते और कल्पवृक्षके सुगन्धित फूलोंकी वर्षा करते जाते थे। असंख्य देव-देवियोंका और नर-नारीका समूह भगवान वृषभदेवके पीछे जा रहा था। शोकसे विह्वल माता मरुदेवी, महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा आदि अन्तःपुरकी नारियाँ तथा महाराज नाभिराज, भरत, बाहुबली, कच्छ, महाकच्छ आदि

प्रधान राजा अत्यन्त उत्कण्ठित भावसे भगवान वृषभदेवके तप कल्याणककी महिमा देख रहे थे। देव लोग भगवान वृषभदेवकी पालकी अयोध्यापुरीके समीपवर्ती 'सिद्धार्थ' नामक वनमें ले गये। वह वन चारों ओरसे सुगन्धित फूलोंकी सुवाससे सुगन्धित हो रहा था। वहाँ चतुर देवांगनाओंने कई तरहके चौक पूर रक्खे थे। देवोंने एक सुन्दर पटमण्डप बनवाया था, जिसमें देवांगनाओंका मनोहर अभिनय-नृत्य हो रहा था। वह वन गन्धर्व किन्नरोंके सुरीले संगीतसे गूंज रहा था। वनके मध्यभागमें एक चन्द्रकान्त मणिकी शिला पड़ी थी।

पालकीसे उतरकर भगवान वृषभदेव उसी शिला पर बैठ गये। वहाँ उन्होंने क्षणभर ठहर कर सबकी ओर मधुर दृष्टिसे देखा और फिर देव, देवेन्द्र तथा कुटुम्बी-जनोंसे पूछकर समस्त वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये। भगवान वृषभदेवने पञ्च-मुष्टियोंसे केश उखाड़ डाले तथा पूर्व दिशाकी ओर मुंह कर खड़े हो सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार करते हुए इन्द्र, सिद्ध और आत्माकी साक्षीपूर्वक समस्त परिग्रहोंका त्याग कर

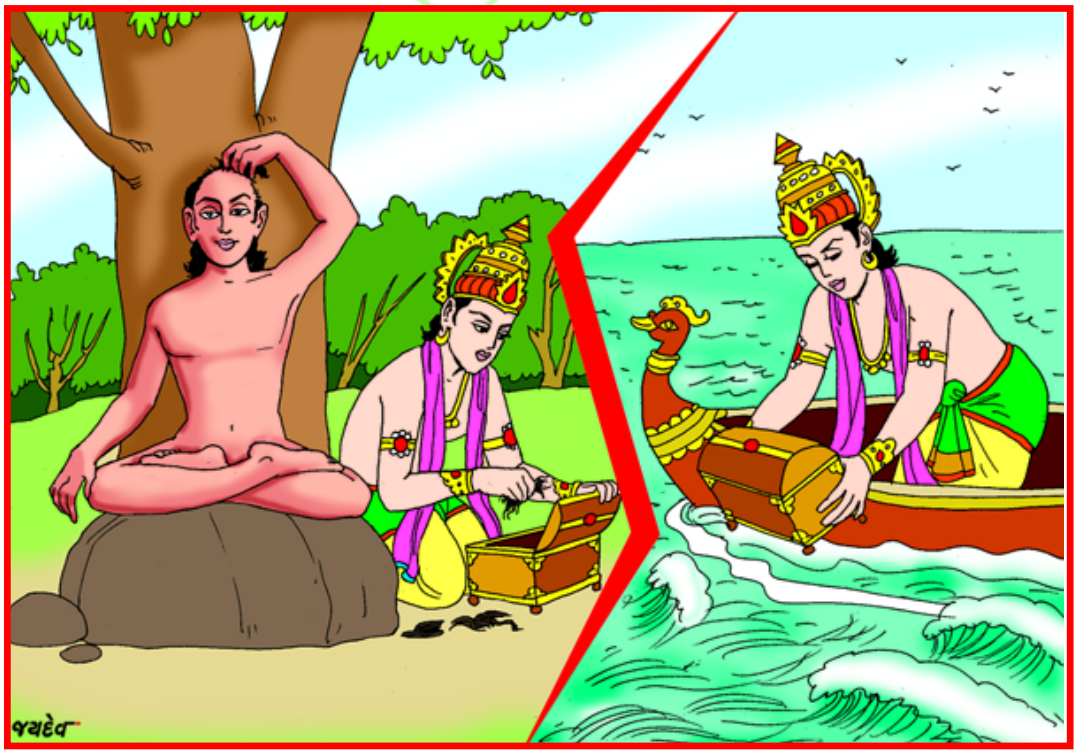

भगवानके केशोंको इन्द्र द्वारा पिटारेमें रखकर व उसका क्षीरसमुद्रमें क्षेपण

दिया था। इस तरह भगवान आदिनाथने चैत्र वदी नवमीके दिन सायंकालके समय उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें जिन-दीक्षा ग्रहण की थी। इन्हें दीक्षा लेते समय ही मनःपर्ययज्ञान और अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई थीं। इनके साथ कच्छ, महाकच्छ आदि चार हजार राजाओंने भी जिनदीक्षा ग्रहण की थी। चार हजार मुनियोंसे घिरे हुए आदीश्वर महाराज, नक्षत्र परिवृत चन्द्रमाकी तरह शोभायमान होते थे।

दीक्षा लेते समय भगवान वृषभदेवने जो केश उखाड़कर फेंक दिये थे, इन्द्र उन्हें रत्नमयी पिटारीमें रखकर क्षीरसागर ले गये और उसकी तरल तरङ्गोंमें श्रद्धापूर्वक छोड़ आये थे। जिनेन्द्र भगवानका तप कल्याणकका उत्सव पूरा कर समस्त देव-देवेन्द्र अपने स्थान पर चले गये। बाहुबली आदि राज-पुत्र भी पितृ-वियोगसे कुछ खिन्न होते हुए अयोध्यापुरी लौट आये थे। वनमें भगवान आदिनाथने छः मासका अनशन धारण कर मेरु समान अड़िग एक आसनसे रहे। प्रतिमायोगस्थ प्रशममूर्ति मुनिश्वरकी उपस्थितिसे वनके पशुगण भी वैर विरोध भूलकर शान्त हो गये थे। हाथी, सिंह, मृग, चित्ता, बन्दर, मोर आदि पशु-पक्षी भी भक्तिभावसे भगवान आदिनाथ मुनिन्द्रको फूल चढ़ाते हैं।

भगवान आदिनाथ बीहड़ अटवियोंमें ध्यान लगाकर आत्म-शुद्धि करते थे। वे बहुत दिनोंके अन्तराल बाद नगरोंमें आहार लेनेके लिये जाते थे, वह भी रूखा-सुखा स्वल्प आहार करते थे। वे अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्तिशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान—इन बारह प्रकारके तपोंको भली भांति करते थे। उन्होंने जगह-जगह घूमकर अपनी चेष्टाओंसे मुनि-मार्गका प्रचार किया था। यद्यपि वे उस समय मुंहसे कुछ बोलते न थे, तथापि उनकी क्रियाएँ इतनी प्रभावक होती थी कि लोग उन्हें देखकर बहुत जल्दी प्रतिबद्ध हो जाते थे। वे कभी ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़की चोटियों पर ध्यान लगाये बैठते थे, कभी शीतकालकी भीषण रात्रिमें नदियोंके तट पर आसन लगाते थे और कभी वर्षा ऋतुमें वृक्षोंके नीचे योगासन लगाकर बैठते थे।

भगवान श्री आदिनाथका ज्ञान कल्याणक

ततोतिता तु तेतीतस्तोतृतोतीतितोवृतः।
ततोऽतातिततोतोते ततता ते ततोततः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे भगवान्! आपने, विज्ञानवृद्धिकी प्राप्तिको रोकनेवाले इन ज्ञानावरणादि कर्मोंसे अपनी विशेष रक्षा की है—ज्ञानावरणादि कर्मोंको नष्ट कर केवलज्ञानादि विशेष गुणोंको प्राप्त किया है। तथा आप परिग्रहरहित—स्वतन्त्र हैं। इसलिये पूज्य और सुरक्षित हैं एवं आपने ज्ञानावरणादि कर्मोंके विस्तृत–अनादिकालिक सम्बन्धको नष्ट कर दिया है अतः आपकी विशालता-प्रभुता स्पष्ट है—आप तीनोंलोकोंके स्वामी हैं।

इस तरह उग्र तपश्चर्या करते-करते जब मुनिराज आदिनाथको एक हजार वर्ष बीत गये, तब वे एक दिन 'पुरीमताल' नामक नगरके पास पहुँचे और वहाँ शकट नामक वनमें निर्मल शिलातल पर पद्मासन लगाकर बैठ गये। उस समय उनकी आत्मविशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने क्षपकश्रेणीमें प्रवेश कर शुक्ल-ध्यानके द्वारा मोहनीयको नाश करके फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय—इन घातिया-कर्मोंका नाश कर फाल्गुन कृष्णा एकादशीके दिन उत्तराषाढ

नक्षत्रमें सकल पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले 'केवलज्ञान'का लाभ लिया। भगवान आदिनाथ केवलज्ञानके द्वारा तीनोंकालोंके समस्त पदार्थोंको एक साथ जानने, देखने लगे थे। ज्ञानावरणके नाश होनेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। दर्शनावरणके अभावमें केवलदर्शन, मोहनीयके अभावमें अनन्त सुख और अन्तरायके अभावमें उन्हें अनन्त वीर्य प्राप्त हुआ था।

जिनेन्द्र भगवानको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, इस बातका पता जब इन्द्रको चला, तब वह समस्त परिवारके साथ भगवानकी पूजाके लिये 'पुरीमतालपुर' आये। इन्द्रकी आज्ञासे पहिले ही धनपति कुबेरने वहाँ दिव्य समवसरण-सभाकी रचना कर दी थी। वह सभा बारह योजन विस्तृत नीलमणिकी गोल शिला-तल पर बनी हुई थी, तथा जमीनसे पाँच हजार धनुष ऊँची थी। ऊपर पहुंचनेके लिये उसमें चार बाजुमें बीस-बीस हजार सीढियाँ बनी हुई थीं, उस सभाके चारों ओर अनेक मणिमय सुवर्णमय कोट बने हुए थे। उसमें चारों दिशाओंमें चार मानस्तम्भ बनाये गये थे, जिन्हें देखनेसे बड़े-बड़े मानियोंका भी मान खण्ड़ित हो जाता था। अनेक नाट्यशालायें बनी हुई थीं, जिनमें स्वर्गकी अप्सरायें भगवद्भक्तिसे प्रेरित होकर नृत्य कर रही थीं। सभामें अनेक परिखाएँ थीं, जिनमें सहस्रदल (हजार पांखुड़ीवाले) कमल फूल रहे थे। वहाँके रत्नमय दरवाजों पर देवलोग पहरा दे रहे थे।

वहाँ समवसरणके मध्यमें भगवान आदिनाथकी गन्धकुटी बनाई गई थी, जिसमें रत्नमय सिंहासन रक्खा हुआ था। सिंहासनके चारों ओर श्रीमण्ड़प बनाया गया था, उसके सब ओर परिक्रमा-रूप बारह सभाएँ बनाई गई थीं, जिनमें देव, देवियाँ, मनुष्य, तिर्यंच, पशु, पक्षी आदि सभी सुखसे बैठ सकते थे। कुबेरके द्वारा बनाई हुई दिव्य सभाको देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ और भक्तिसे 'जय-जय' शब्द करता हुआ समस्त परिवारके साथ वहाँ पहुँचा; जहाँ पूर्ण ज्ञानी, योगी, भगवान आदिनाथ बिराजमान थे। ऊपर जिस गन्धकुटीका कथन कर आये हैं, भगवान आदिनाथ उसीमें स्वर्ण सिंहासन पर चार अंगुल अन्तरीक्षमें विराजमान थे। वहाँ उनके दिव्य तेजसे सब ओर प्रकाश-सा फैल रहा था। इन्द्रने विनय सहित नमस्कार कर सुमधुर शब्दोंमें हजार नामोंसे उन्हें अलंकृत कर उनकी स्तुति की।

बहिनश्रीके वचनामृत

तुज ज्ञान ध्याननो रंग अम आदर्श रहो,
हो शिवपद तक तुज संग, माता हाथ ग्रहो.

पूज्य गुरुदेवश्रीकी साधना भूमिमें–सुवर्णपुरीमें प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी रात्रि महिलाशास्त्रसभामें व्यक्त स्वानुभवरसझरती और देवगुरुशास्त्रकी भक्तियुक्त अध्यात्मवाणी पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें 'बहिनश्रीके वचनामृत'रूप वि.सं. २०३३(ई.स. १९७७)में प्रकाशित हुई। उसमें रहे हुए अध्यात्मके तलस्पर्शी गहन रहस्योंसे पूज्य गुरुदेवश्री बहुत ही प्रसन्न एवं प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी प्रसन्न भावना व्यक्त करते हुए ट्रस्टके प्रमुख श्री रामजीभाई दोशीको कहा : ''भाई! यह 'वचनामृत' पुस्तक ऐसा अच्छा है कि उसकी एक लाख प्रत छपानी चाहिए''। 'माननीय रामजीभाईने उत्तरमें कहा : साहेब! एक लाख नहीं, परंतु सवा लाख छपवाऊँगा।' (यह भावना कालान्तरमें पूर्ण हुई) 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके लिए पूज्य गुरुदेवश्रीकी ऐसी असाधारण प्रसन्नता एवं अहोभाव देखकर–सुनकर कतिपय मुमुक्षुओंने उसको संगमरमरके शिलापट पर उत्कीर्ण करनेकी भावना व्यक्त की। यह बात प्रस्तुत होते पूज्य गुरुदेवश्रीने ऐसी भावना व्यक्त की कि 'वचनामृत उत्कीर्ण करवाकर लगाने हेतु (पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके) नामका एक नया स्वतंत्र मकान बनाना चाहिए। माननीय श्री रामजीभाईने पूज्य गुरुदेवश्रीकी भावना शिरोधार्य करके निर्णय किया कि–'बहिनश्री चंपाबेन वचनामृत भवन'का निर्माण करना; जिसकी शिलान्यासविधि वि.सं. २०३७(ई.स. १९८०)की कार्तिक शुक्ला पंचमीके शुभ दिनको पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें, उनके पवित्र करकमलसे, ईंट, ताम्रकलश प्रशस्ति, शिला आदि पर स्वस्तिक अंकन द्वारा, हुई थी व उनकी प्रतिष्ठा वि.सं. २०४१(ई.स. १९८५) फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको हुई।

ये वचनामृत इस पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयकी ऊपरकी मंझिलकी दिवारों पर संगमरमरके शिलापटों पर उत्कीर्ण करवाये गये है।

राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यग्दर्शन

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि॥

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं॥

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं॥

–भगवान आचार्य कुन्दकुन्ददेव

अर्थ :—जो श्रावक सम्यक्त्वका ध्यान करता है वह जीव सम्यग्दृष्टि है और सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ दुष्ट जो आठ कर्म उनका क्षय करता है।

अचार्य कहते हैं कि : वहुत कहनेसे क्या साध्य है, जो नरप्रधान अतीतकालमें सिद्ध हुए हैं और आगामी कालमें सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्वका माहात्म्य जानो।

जिन पुरुषोंने मुक्तिको करनेवाले सम्यक्त्वको स्वप्नावस्थामें भी मलिन नहीं किया, अतीचार नहीं लगाया उन पुरुषोंको धन्य है, वे ही मनुष्य हैं, वे ही भले कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं, वे ही पंड़ित हैं।

एक दिन भगवान महावीर विहार करते हुए राजगृह नगरमें आये और वहाँके विपुलाचल पर्वत पर समवशरण सहित विराजमान हो गये। उस समय राजगृह नगरमें राजा श्रेणिकका राज्य था। पहिले कारणवश श्रेणिक राजाने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था; परंतु चेलना रानीके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर उन्होंने बौद्ध-धर्मको छोड़कर पुनः जैन-धर्म धारण कर लिया था। जब उन्हें विपुलाचल पर महावीर जिनेन्द्रके आगमनके समाचार मिले, तब वे समस्त परिवार व सवारीके साथ हाथी पर बैठकर उनकी वन्दनाके लिये गये और उन्हें नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये।

राजा श्रेणिकका भगवान महावीरके समवसरणमें प्रवेश

भगवान महावीरने सुन्दर देशनासे पदार्थोंका विवेचन किया, जिसे सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। क्षायिक सम्यग्दर्शन पाकर उसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उन्होंने दर्शनविशुद्धि आदि १६ भावनाएँ भाकर 'तीर्थंकर' नामक नाम प्रकृतिका उपार्जन किया। जिससे वह आगामी उत्सर्पिणीकालमें 'पद्मनाभि' नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे। राजा श्रेणिकको भगवान महावीरके प्रति इतनी गाढ़ श्रद्धा हो गई थी कि वह उनके पास प्रायः नित्य प्रति जाकर तत्त्वोंका उपदेश सुना करते थे। चित्रमें एक ओर राजा श्रेणिक व दूसरी ओर गणधरदेव श्री गौतमस्वामी परम गुरु सर्वज्ञदेव श्री महावीर प्रभुकी वंदना करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

श्रेणिकको आसन्न भव्य समझकर गौतम गणधर आदि भी उन्हें खूब उपदेश दिया करते थे। प्रथमानुयोगका उपदेश तो प्रायः श्रेणिकके प्रश्नोंके अनुसार ही किया गया था।

भगवान श्री मल्लिनाथ पूर्व तीसरे भवमें

यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सागरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपतति स्म॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–जिन महर्षिके जीवादि समस्त पदार्थोंकी सब ओरसे अशेषविशेषताके साथ जाननेवाला केवलज्ञान स्पष्टरूपसे उत्पन्न हुआ और इसलिये जिन्हें देवों तथा मनुष्योंसे सहित सभी संसारने बद्धाञ्जलि होकर प्रणाम किया—उन मल्लि जिनकी शरणको प्राप्त हुआ हूँ।

इसी जम्बूद्वीपमें मेरुपर्वतसे पूर्वकी ओर कच्छकावती नामके देशमें एक वीतशोक नामका नगर है। उसमें वैश्रवण नामका उच्च कुलीन राजा राज्य करता था। जिस प्रकार कुम्भकारके हाथमें लगी हुई मिट्टी उसके वश रहती है, उसी प्रकार बड़े-बड़े गुणोंसे शोभायमान उस राजाकी समस्त पृथवी उसके वश रहती थी। प्रजाका कल्याण करनेवाले उस राजासे प्रजाका सबसे बड़ा कल्याण यह होता था, कि वह खजाना, किल्ला तथा सेना आदिके द्वारा प्रजाका हित करता था। वह किसी महाभयके समय प्रजाकी रक्षा करनेके लिये धनका संचय करता था और उस प्रजाको सन्मार्गमें, चलानेके लिए उसे दण्ड देता था। एकबार वनमें पधारे सुगुप्ति मुनिराजके दर्शन हेतु जाते हैं, व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप रत्नत्रयका सदुपदेश सुनकर श्रावकोचित रत्नत्रयव्रत

राजा वैश्रवणका मुनिराजके पास धर्मश्रवण

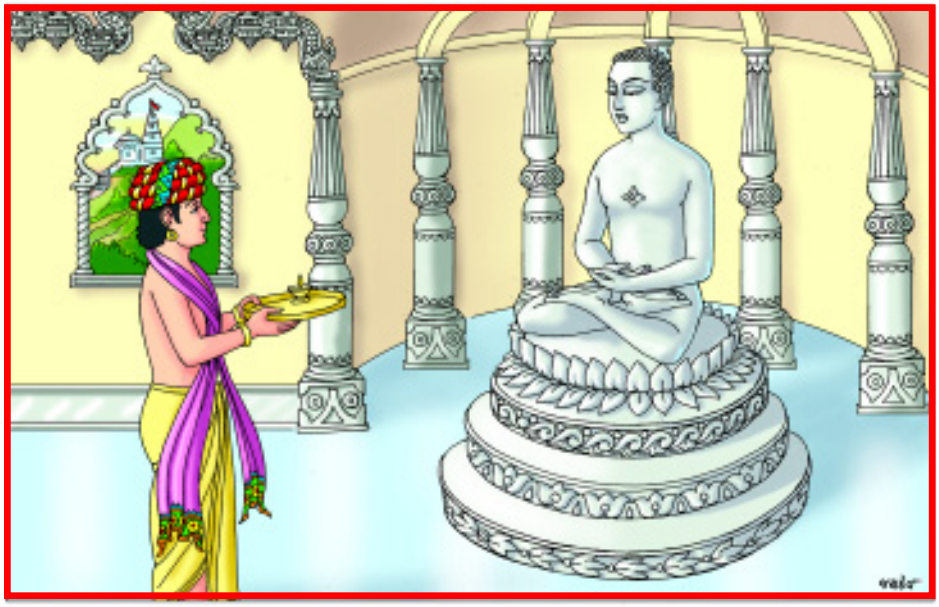

राजा वैश्रवण द्वारा जिनमंदिरमें पूजा

अंगीकार करते है, जिनमन्दिरमें जिनप्रतिमा समक्ष वे अति उत्साह सह विधि अनुसार विधान मंडल रचकर रत्नत्रय विधान पूजा करते है।

किसी एक दिन उदार बुद्धिवाला वह राजा वर्षाके प्रारम्भमें बढ़ती हुई वनावलीको देखनेके लिये नगरके बाहर गया। वहाँ जिस प्रकार कोई बड़ा राजा अपनी शाखाओं और उपशाखाओंको फैलाकर पृथ्वीको व्याप्त कर रहता है और अनेक द्विज—ब्राह्मण उसकी सेवा करते हैं उसी प्रकार एक वटका वृक्ष अपनी शाखाओं और उपशाखाओंको फैलाकर तथा पृथ्वियोंको व्याप्त कर खड़ा था एवं अनेक द्विज–पक्षीगण उसकी सेवा करते थे। उस वटवृक्षको देखकर राजा समीपवर्ती लोगोंसे कहने लगा कि देखो देखो, इसका विस्तार तो देखो। यह ऊँचाई और बद्धमूलताको धारण करता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो हमारा अनुकरण ही कर रहा हो।

इस प्रकार समीपवर्ती प्रिय मनुष्यको आश्चर्यके साथ दिखलाता हुआ वह राजा दूसरे वनमें चला गया और घूमकर फिरसे उसी मार्गसे वापस आया। लौटकर उसने देखा, कि वह वटवृक्ष बिजली गिरनेके कारण जड़ तक भस्म हो गया है। उसे देखकर वह विचार करने लगा कि इस संसारमें मजबूत जड़ किसकी है? विस्तार किसका

वटवृक्षका क्षणमें नाश देख वैराग्यको प्राप्त राजा वैश्रवण

है? और ऊँचाई किसकी है? जब इस बद्धमूल, विस्तृत और उन्नत वट वृक्षकी ऐसी दशा हो गयी तब दूसरेका क्या विचार हो सकता है? ऐसा विचार करता हुआ वह संसारकी स्थितिसे भयभीत हो गया। उसने अपना राज्य पुत्रको दे दिया और श्रीनाग नामक पर्वत पर विराजमान श्रीनाग नामक मुनिराजके पास जाकर उनसे धर्मरूपी रसायन पान कर अनेक राजाओंके साथ श्रेष्ठ तप धारण कर, यथाविधि बुद्धिपूर्वक ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया, सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध किया, चिरकाल तक तपस्या की और अन्तमें समस्त परिग्रहका त्याग कर अनुत्तर विमानोंमेंसे अपराजित नामक विमानमें देव पद प्राप्त किया।

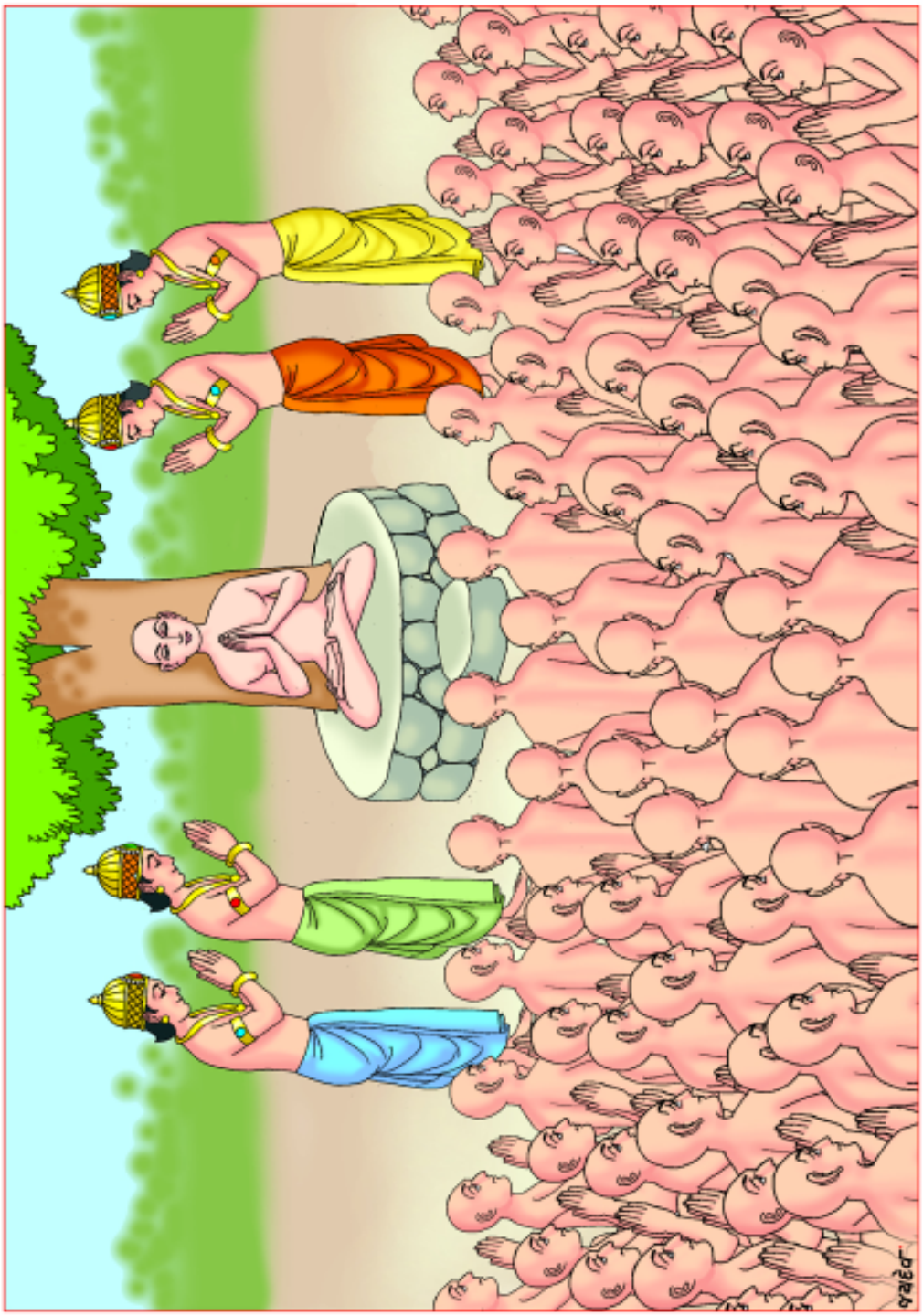

श्रीनाथ मुनिराजके पास राजा वैश्रवणका दीक्षा ग्रहण

नन्दीश्वर द्वीप रचना

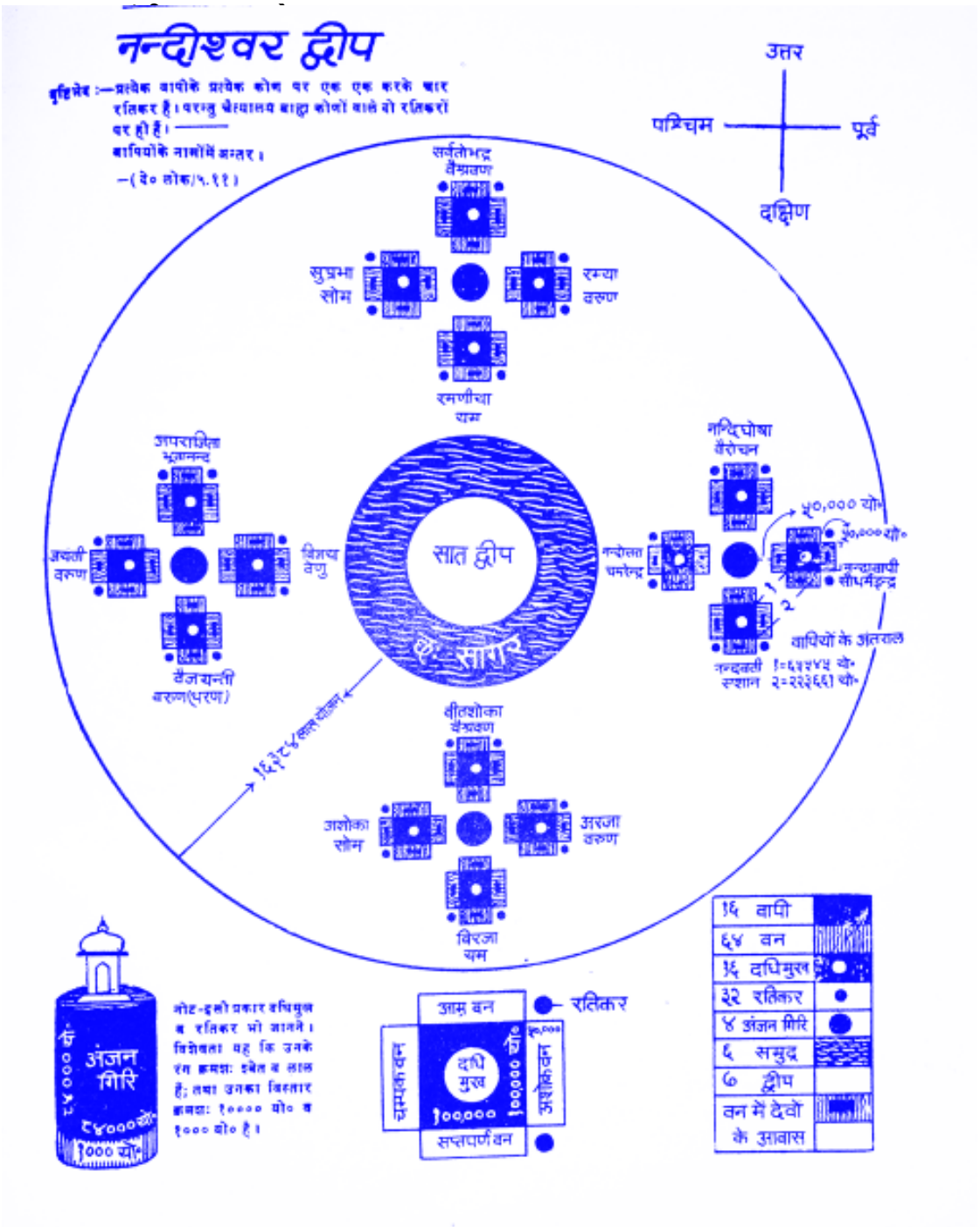

नंदीश्वर–जिनधामनी शोभा सारी,
हां रे बिंब रतनमयी वीतरागी;
हां रे जिहां बावन जिनमंदिर भारी,
हां रे सोहे बिंब एकसो आठ. (२) नंदी. १.

इस लोकके मध्यलोकमें असंख्यात द्वीप-समुद्रोंमेंसे यह आठवाँ द्वीप है। उसका कुल विस्तार १,६२,८४,००,००० योजन प्रमाण है। प्रत्येक दिशाकी ओर उसके बहुमध्य भागमें काले रंगका एक-एक अञ्जनगिरि है। उस अञ्जनगिरिके चारों ओर १,००००० योजन छोड़कर ४ वापियाँ हैं। चारों वापियोंका भीतरी अन्तराल ६५०४५ योजन है और बाहरी अन्तर २,२३,६६९ योजन है। प्रत्येक वापीकी चारों दिशाओंमें अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र नामके चार वन है। इस प्रकार इस द्वीपकी एक दिशामें १६ और चारों दिशाओंमें ६४ वन हैं। उन सब पर अक्तंस आदि ६४ देव रहते हैं। प्रत्येक वापीमें सफेद रंगका एक-एक दधिमुख पर्वत है। प्रत्येक वापीके बाह्य दो कोनों पर लालरंगके दो रतिकर पर्वत है। जिनमन्दिर मात्र बाहरवाले दो रतिकर पर ही होते हैं, *अभ्यंतर रतिकरों पर मात्र देव क्रीड़ा करते हैं।

उस प्रकार एक दिशामें एक अञ्जनगिरि, चार दधिमुखगिरि व आठ रतिकर— ये सब मिलकर कुल १३ पर्वत है, उनके उपर १३ शाश्वत (अकृत्रिम) जिनमन्दिर होते हैं। इस प्रकार ५२ पर्वत, ५२ मन्दिर और १६ वापियाँ व ६४ वन होते हैं। इन प्रत्येक मंदिरमें १०८ रत्नमयी भव्य अकृत्रिम जिनबिम्ब बिराजमान है। सब मिलकर ५६१६ (छप्पनसो सोलह) रत्नमयी प्रतिमाएँ होती है।

---

* पाठान्तरः लोक विनिश्चयकी अपेक्षा चारों कोनों पर चार रतिकर है।

अष्टाह्निकामें देवों द्वारा नंदीश्वर द्वीपमें भक्ति व पूजन

—ऐसे बावन पर्वत ऊपर एक-एक विशाल शाश्वत जिनमंदिर हैं और उन प्रत्येक जिनमंदिरमें ५०० धनुष प्रमाण ऊँची १०८ रत्नमयी मनोहर शाश्वत वीतराग भाववाही जिन प्रतिमाएँ हैं। आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे पूर्णिमा (अष्टाह्निका पर्व)—ऐसे आठ दिन, वैमानिक आदि चतुर्निकायके देव वहाँ जाकर उन शाश्वत जिनमंदिरोंमें बड़ी भक्ति-पूजापूर्वक धामधूमसे अष्टाह्निका पर्व मनाते हैं।

चारों प्रकारके देव नन्दीश्वरद्वीपमें प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मासमें जाते हैं। नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिनमन्दिरोंकी यात्रामें बहुत भक्तिसे युक्त कल्पवासी देव पूर्वदिशामें भवनवासी दक्षिण दिशामें, व्यन्तर पश्चिम दिशामें और ज्योतिषदेव उत्तर दिशामें रहे नन्दीश्वरद्वीपके जिनमन्दिरोंमें मुखसे बहुत स्तोत्रोंका उच्चारण करते हुए अपनी-अपनी विभूतिके योग्य महिमा करते हैं। ये देव आसक्त चित्त होकर अष्टमीसे पूर्णिमा तक पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रि और पश्चिमरात्रिमें दो-दो पहर तक उत्तम भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा-क्रमसे जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी विविध प्रकारसे पूजा करते हैं।

इस प्रकार बड़े उत्सव सहित जाकर वे (चतुर्निकायदेव) अपराह्निक दिनोंमें मन्दर (सुमेरु) पर्वतके जिन भवनोंमें जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं।

मनुष्य जीव वहाँ नहीं जा पाते अतः वे इन दिनोंमें उन बिम्बोंकी अर्थात् नंदीश्वर द्वीपकी स्थापना करके सिद्ध भक्ति, नंदीश्वर चैत्य भक्ति, पंचगुरु भक्ति, आदि क्रियाएँ करते हैं। पर्वाह्निक स्वाध्याय ग्रहणके अनन्तर सर्व संघ सह अष्टाह्निकामें भक्तिभावसे पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति द्वारा अष्टाह्निक पूजा करते हैं।

सर्व पूजाकी पुस्तकोंमें अष्टाह्निक पूजा 'संवौषट्' पदके द्वारा बुलाकर, 'ठः ठः द्वारा ठहराकर तथा 'वषट्' पदके द्वारा निकट करके पाँचों मेरु पर्वतों पर स्थित अस्सी चैत्यालयोंकी समस्त प्रतिमाओंकी मैं पूजा करता हूँ। इसी प्रकार 'संवौषट्' पदके द्वारा बुलाकर, 'ठः ठः' पदके द्वारा ठहराकर तथा 'वषट्' पदके द्वारा निकट करके हम नन्दीश्वरद्वीपके जिनेन्द्रोंकी पूजा करते हैं।

भगवान श्री महावीरस्वामीके
सम्यक्त्व प्राप्ति पश्चात्के १० भव
६. हरिषेण राजा
७. लांतव देव
५. महाशुक्र देव
८. कनकोज्ज्वल विद्याधर
४. प्रियमित्र चक्रवर्ती
शासननायक श्री महावीरस्वामी
९. सौधर्म स्वर्गमें देव
३. सहस्रार देव
१०. सिंहके भवमें सम्यग्दर्शन
१. अच्युत स्वर्गमें इन्द्र
२. नंद राजा

त्वं जिन गतमदमाय-स्तव भावानां मुमुक्षुकामद मायः।
श्रेयान् श्रीमदमाय-स्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः॥

–आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे मोक्षाभिलाषी जीवोंके मनोरथको देनेवाले वीर जीनेन्द्र! आप गर्व और मायासे रहित हैं तथा आपका जीवादि पदार्थ विषयक केवलज्ञान अथवा आगमरूप प्रमाण अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवान्! आपने लक्ष्मीके मदको नष्ट करनेवाला अथवा स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करानेवाली श्रीलक्ष्मीसे युक्त और मायासे रहित श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रिय विषयका उपदेश दिया है।

(१०) **महावीर प्रभु पूर्व दसवें भवमें सिंहके रूपमें चारण ऋद्धिधारी मुनिके उपदेशसे समकित प्राप्त करते हैं।** (विस्तृत कथा हेतु देखे जैन पौराणिक कथा भाग-४ पृ. ४८)

(९) **पश्चात् सौधर्म देव होते हैं।**

(८) **तत्पश्चात् धातकीखण्डके विदेहमें कनकोज्ज्वल विद्याधर होकर मुनिका उपदेश सुन दीक्षित होते हैं।** (विस्तृत कथा हेतु जैन पौराणिक कथा भाग-५, पृ. २९)

(७) **तत्पश्चात् लान्तव देव होते हैं।**

(६) **तत्पश्चात् जम्बूद्वीपस्थ हरिषेण राजा होकर मुनि होते हैं।** (विस्तृत कथा हेतु देखे जैन पौराणिक लघुकथा भाग-५, पृ. ३५)

(५) **तत्पश्चात् महाशुक्र देव होते हैं।**

(४) **तत्पश्चात् धातकीखण्ड विदेहमें प्रियमित्र चक्रवर्ती होकर क्षेमंकर जिनका उपदेश सुनकर मुनि होते हैं।** (विस्तृत कथा हेतु देखे जैन पौराणिक लघुकथा भाग-५, पृ. ३६)

(३) **तत्पश्चात् सहस्रार देव होते हैं।**

(२) **जम्बूद्वीपमें नंद राजा होकर प्रौष्ठिल मुनिके पास दीक्षित होकर तीर्थंकर प्रकृति युक्त होते हैं।**

(१) **अच्युत स्वर्गमें इन्द्र होते हैं।**

वहाँसे चयकर वर्तमान भवमें पंचकल्याणक सह जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके बाल ब्रह्मचारी, वर्द्धमान नामक वर्तमान शासननायक २४वें तीर्थंकर हुए हैं। उन्हें कोटि कोटि वंदना।

श्री शांतिनाथ भगवान पूर्व तीसरे भवमें

स्वदोष शान्त्यावहितात्म शान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो में भगवान् शरण्यः॥

—स्वामी समन्तभद्रदेव

अर्थ :–'हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र! आप राग-द्वेष आदि दोषोंके दूर करनेसे आत्म शान्तिको धारण करनेवाले, शरणमें आये हुए प्राणियोंकी शान्तिके विधाता और शरणागतोंकी रक्षा करनेमें सक्षम भगवान श्री शान्तिनाथ हमारे संसार सम्बन्धी क्लेश और भवोंकी शान्तिके लिये अवतीर्ण हों। वे हमारे सांसारिक दुःख नष्ट करें।'

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें किसी समय घनरथ नामका राजा राज्य करता था। उसकी महारानीका नाम मनोहरा था। उन दोनोंके मेघरथ (श्री शांतिनाथ भगवानका पूर्वभव) और दृढ़रथ नामके दो पुत्र थे। उनमें मेघरथ बड़ा और दृढ़रथ छोटा था। दोनों भाई परस्पर बहुत स्नेह रखते थे; एक के बिना दूसरेको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वे सूर्य और चन्द्रमाकी तरह शोभित थे। उन दोनोंके पराक्रम, बुद्धि, विनय, प्रताप, क्षमा, सत्य तथा त्याग आदि अनेक गुण स्वभावसे ही प्रकट हुए थे।

कुछ समय बाद प्रियमित्रा भार्याके गर्भसे मेघरथको नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ और सुमतिदेवीके गर्भसे दृढ़रथको वरसेन नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार पुत्र-पौत्र आदिके मध्य राजा घनरथ इन्द्रकी तरह शोभायमान होते थे। एक दिन महाराज घनरथ राजसभामें बैठे हुए थे, उनके दोनों पुत्र भी उन्हींके पास बैठे थे। इतनेमें प्रियमित्राकी दासी सुषेणा घनतुण्ड नामका एक मुर्गा लाई और राजासे कहने लगी जिसका मुर्गा इससे लड़ाईमें जीत लेगा, उसे मैं एक हजार सुवर्णमुद्रायें दूंगी। यह सुनकर दृढ़रथकी

राजा धनरथके दरबारमें युवराज मेघकुंवर द्वारा लडते मुर्गेको देख पूर्व भवावलीका वर्णन

पत्नी सुमतिकी दासी कांचना उसके साथ लड़ानेके लिये वज्रतुण्ड नामका एक मुर्गा लाई। घनतुण्ड और वज्रतुण्डमें खुलकर लडाई होने लगी। कभी सुषेणाका मुर्गा कांचनाके मुर्गेको पीछे हटा देता और कभी कांचनाका मुर्गा सुषेणाके मुर्गेको पीछे हटा देता था। दोनों दलके मनुष्य बारी-बारीसे अपने मुर्गेकी जीत पर हर्षसे तालियाँ पीटते थे। दोनों मुर्गोंके बलवीर्यसे चकित होकर राजा घनरथने मेघरथसे पूछा कि इन मुर्गोंमें यह बल कहाँसे आया?

उसी समय घनरथ राजाके उत्तरमें मेघरथ कुमारने अपने अवधिज्ञानके बलसे मुर्गोंके पूर्वभवोंकी कथा कहीं। दोनों मुर्गोंने भी अपने पूर्व-भव सुनकर परस्परका वैर भाव छोड़ दिया और संन्यासपूर्वक मरण कर उनमेंसे एक भूतारण्य (भूतरमण) नामक वनमें ताम्रचूल नामका देव हुआ और दूसरा देवारण्य (देवरमण) नामक वनमें कनकचूल नामका व्यंतर देव हुआ।

मुर्गोंके जीवका व्यंतर होने पर उपकार प्रदर्शन हेतु मेघकुमारके पास जाना

वहाँ जब उन देवोंने 'अवधिज्ञान'से अपने पूर्व-भवोंका विचार किया, तब उन्होंने शीघ्र पुण्डरीकिणी आकर राजकुमार मेघरथका खूब सत्कार किया और उनसे अपने पूर्व-भवोंका सम्बन्ध बतलाया। इसके बाद उन व्यंतर देवोंने कहा—'राजकुमार! आपने

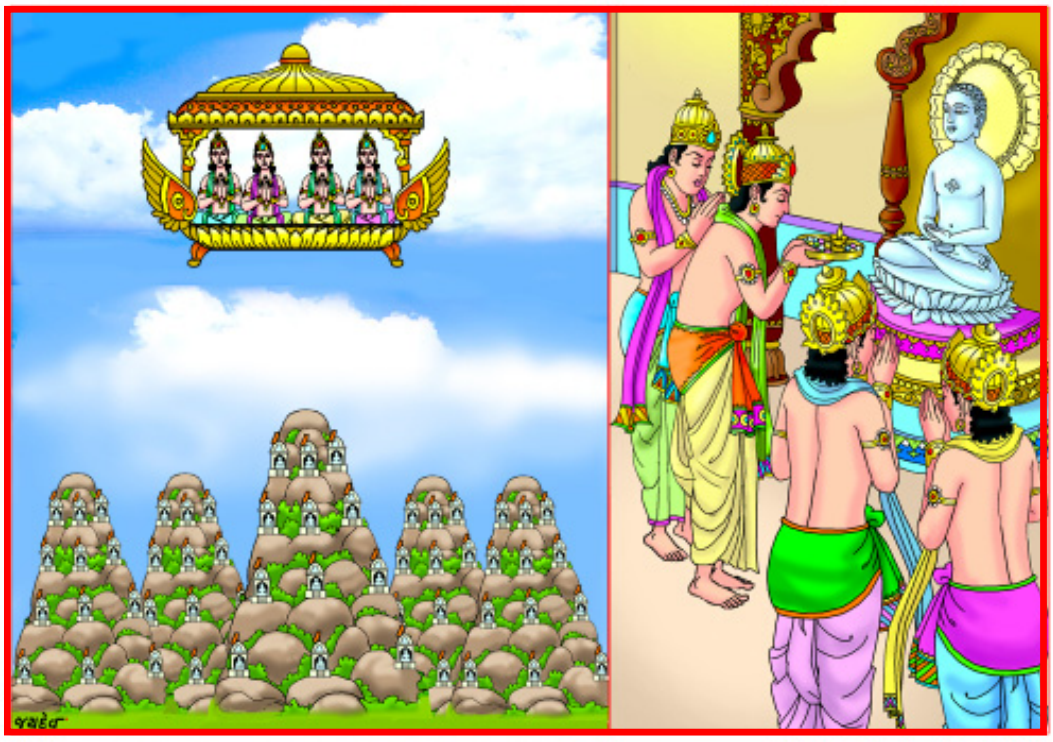

व्यंतरों द्वारा मेघकुमारके कुटुम्बको ढाई द्वीपके अकृत्रिम जिनालयोंकी यात्रा कराना

हमारे साथ जो उपकार किया है, हम उसका बदला नहीं चुका सकते। पर हम चाहते हैं कि आप लोग हमारे साथ चल कर मानुषोत्तर पर्वत तककी यात्रा कर लें। राजकुमार मेघरथ तथा महाराज घनरथकी आज्ञा मिलने पर देवोंने सुन्दर विमान बनाया और उसमें समस्त परिवार सहित राजकुमार मेघरथको बैठाकर उसे आकाशमें ले गये। वे देव उन्हें क्रमसे भरत, हैमवत आदि क्षेत्रों, गंगा, सिन्धु आदि नदियों, हिमवन पर्वत, मेरु आदि पर्वतों, पद्म, महापद्म आदि सरोवरों तथा अनेक देशों और नगरोंकी शोभा दिखलाते हुए मानुषोत्तर पर्वत पर ले गये। कुमार मेघरथ प्रकृतिकी अद्‌भुत शोभा देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने कुटुम्बीजनों सह समस्त अकृत्रिम चैत्यालयोंकी अति भक्तिभावसे वन्दना की, स्तुति की और फिर उन्हीं देवोंकी सहायतासे वह अपने नगर पुण्डरीकिणीपुरीको लौट आये। घर आने पर देवोंने उन्हें अनेक वस्त्र-आभूषण, मणिमालायें आदि भेंट की और फिर वे अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

भरत चक्रवर्ती द्वारा मुनिन्द्र व भगवान बाहुबलीकी पूजा

ऐसे बाहुबली देखें, वनमें.....(२)
जाके राग-द्वेष नहीं तनमें.....

ग्रीष्म ऋतु शिखर के उपार.....(२)
मगन रहे ध्याननमें.....१

चातुर्मास तरुतल ठाडे.....(२)
बुंद सहे छिन छिन में.....२

शीतमास दरिया के किनारे.....(२)
धीरज धारे ध्याननमें.....३

ऐसे गुरुको मैं नित प्रति ध्याऊँ.....(२)
देत ढोक चरणनमें.....४

एक वर्षसे प्रतिमायोग धारण कर बाहुबली मुनिराज अड़गरूपसे ध्यानस्थ खड़े थे, तब भरत चक्रवर्ती उनकी पूजन करने आये; उसी समय बाहुबली मुनिराजने क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर मेरुवत् निष्कंप निर्मल ध्यान द्वारा शेष स्वल्प कषायोंका क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया। भरत चक्रवर्तीने फिरसे बाहुबली केवलीकी अति भक्ति सहित भक्ति-पूजा की।

(विस्तृत कथा हेतु देखे जैन पौराणिक लघुकथा भाग-४, पृ. ५९)

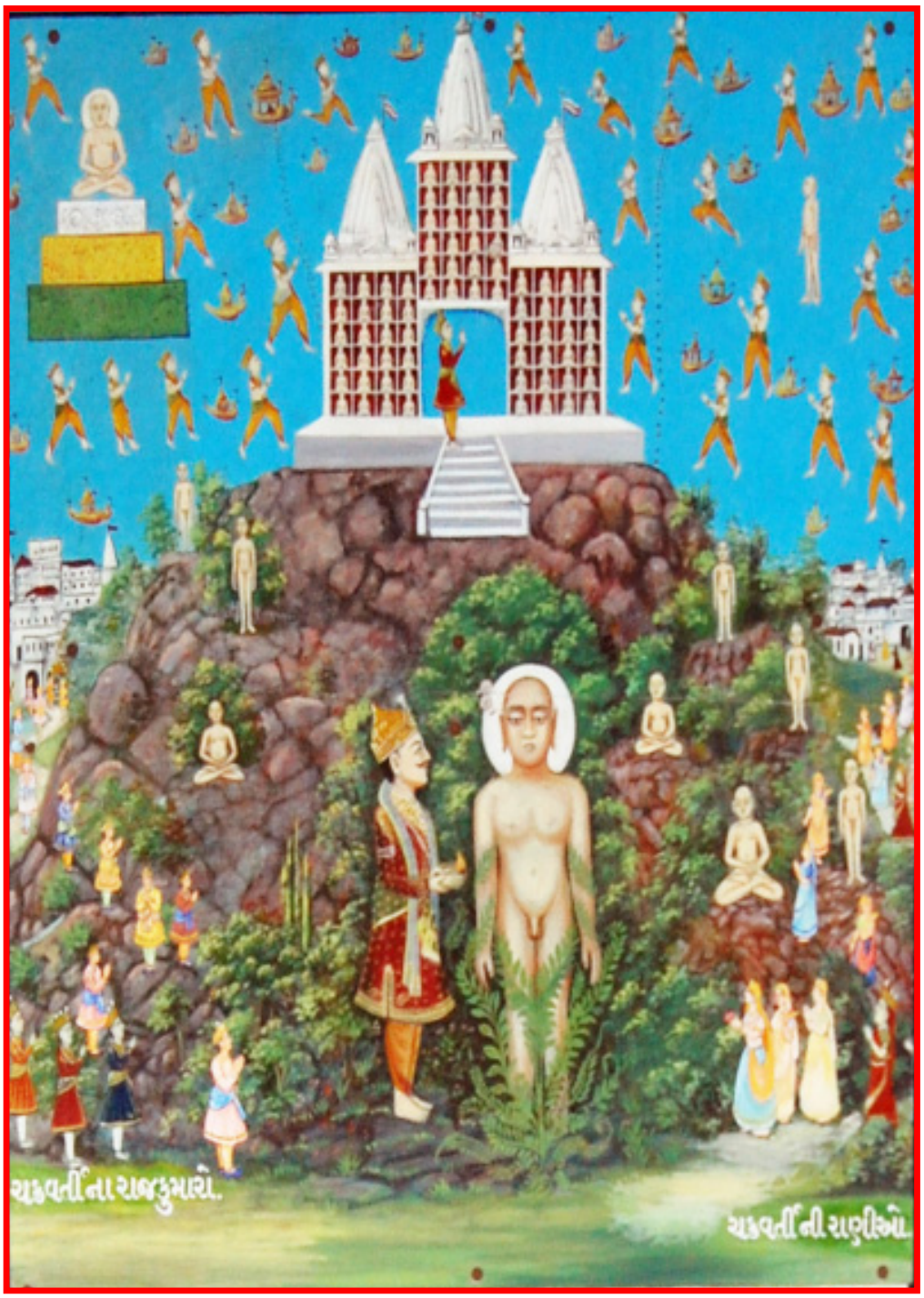

चक्रवर्ती भरत द्वारा प्रथम बाहुबली मुनिवंदकी व पश्चात्
बाहुबली केवलीकी पूजा व भक्ति

(113)

श्री धरसेनाचार्य द्वारा पुष्पदंत व भूतबलि मुनिराजको उपदेश

मुनिराज पुष्पदंत व भूतबलिको आचार्य धरसेन द्वारा महाकर्मप्रकृति प्राभृतका उपदेश

सौराष्ट्र देशके नेमिनाथ निर्वाणक्षेत्र गिरनार पर्वत पर चन्द्रगुफामें रहते, अंग-पूर्व सम्बन्धित एक देशके ज्ञाता, अष्टांग निमित्तके पारगामी भगवान श्री धरसेनाचार्यदेव, श्री पुष्पदंत तथा श्री भूतबलि नामक दो मुनिवरोंको महाकर्मप्रकृति प्राभृतका ज्ञान देते हैं। उसमेंसे उन मुनिवरों द्वारा षट्खंडागमकी रचना हुई।

(विस्तृत कथा हेतु देखें भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा पृ. ५१ से ६६ तक)

अध्यात्ममूर्ति परमोपकारी
पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा पंच परमेष्ठी वंदना

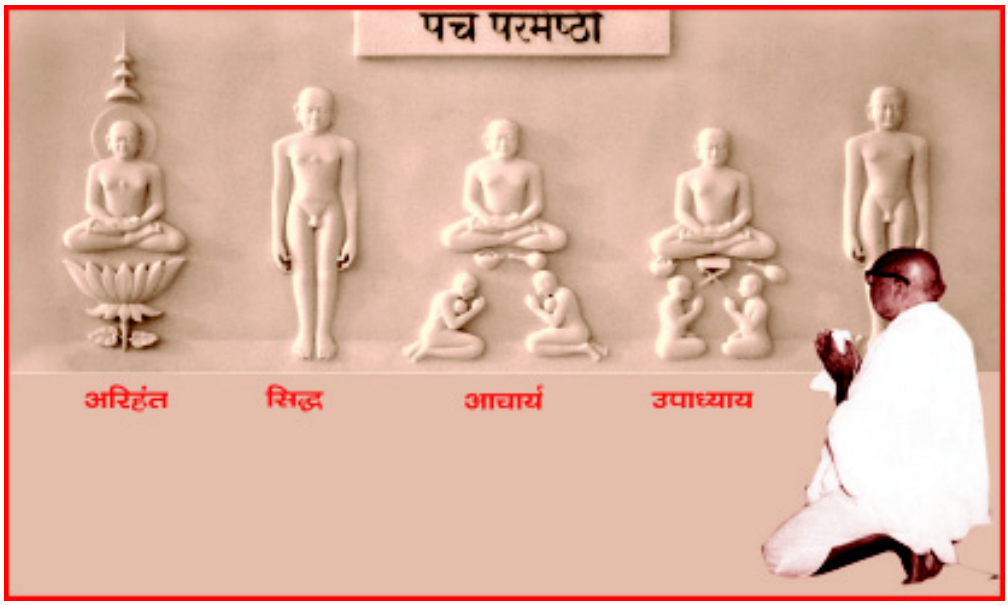

अर्हन्त परमात्मा : चौंतीस अतिशययुक्त, अरु घनघाति कर्म विमुक्त हैं।
अर्हंत श्री कैवल्यज्ञानादिक परमगुण युक्त हैं॥

सिद्ध परमात्मा : हैं अष्ट गुण संयुक्त, आठों कर्म-बन्ध विनष्ट हैं।
लोकाग्रमें जो हैं प्रतिष्ठित परम शाश्वत सिद्ध हैं॥

आचार्य परमात्मा : हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं।
पंचेन्द्रि-गजके दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं॥

उपाध्याय परमात्मा : जो रत्नत्रयसे युक्त निकांक्षित्वसे भरपूर हैं।
उवझाय वे जिनवर-कथित तत्त्वोपदेष्टा शूर हैं॥

साधु परमात्मा : निर्ग्रन्थ हैं निर्मोह हैं व्यापारसे प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउआराधनामें जो सदा अनुरक्त हैं॥

त्रिकालवर्ती उक्त पंच-परमेष्ठी भगवंतोंको द्रव्य-भावसे अत्यंत भक्तिपूर्वक अध्यात्ममूर्ति परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी वंदन करते है।

जैनधर्मप्रसिद्ध आनंद मंगल सूचक नंद्यावर्त स्वस्तिक सहित अष्ट मंगल

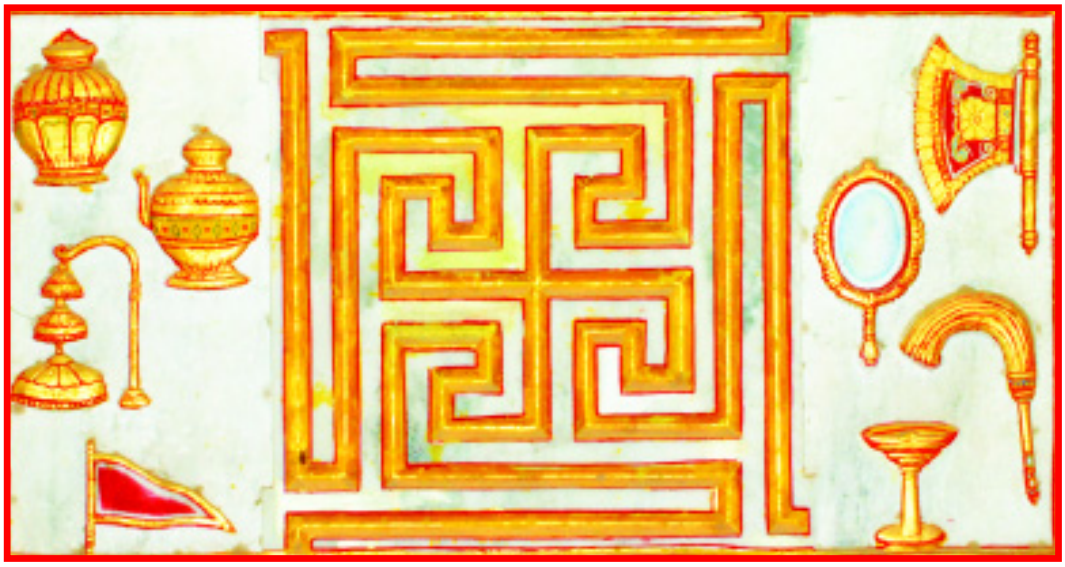

* नंद्यावर्त स्वस्तिक :-

एक प्रकारका अति प्राचीन मङ्गलसूचक चिह्न, जो धार्मिक शुभ अवसरों पर मंगल चिह्नके रूपमें उपयोगमें लिया जाता है।

मंगल : पुष्य, पत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादिक सब मंगलके ही पर्यायवाची शब्द है, क्योंकि यह मलों (ज्ञानावरणादि द्रव्यमल और अज्ञान, मिथ्यादर्शन, राग, द्वेष आदि भावमल)को गालता है, विनष्ट करता है,

घातता है, दहन करता है, हनता है, विध्वंस करता है। अतः इसे 'मंगल' कहते हैं। अथवा सुख या पुण्यको लाता है, इसलिये भी इसे मंगल समझना चाहिये।

* मंगलके भेद :-

भेद : नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव—इस प्रकार वह भेदरूप कहा गया है।

मंगल सामान्यकी अपेक्षासे मंगल एक प्रकारका है, भेदसे सम्यक् रत्नत्रयरूप ३, धर्म, सिद्ध, साधु और अर्हन्तके भेदसे ४, ज्ञान, दर्शन व ३ गुप्तिके भेदसे ५ प्रकारके अथवा 'जिनेन्द्रदेवको नमस्कार हो' आदिरूपसे अनेक प्रकारका है।

* अष्ट मंगल :-

अष्ट मंगल द्रव्य : अर्हन्तके प्रकरणमें अष्ट मंगल द्रव्य होते हैं।

घंटा, प्रभृति ये सब उपकरण तथा दिव्य मंगल द्रव्य पृथक्-पृथक् जिनेन्द्र प्रतिमाओंके पासमें सुशोभित होते हैं। ये सब प्रतिमाओंके परिवार स्वरूप जानना चाहिये। भृंगार, कलश, दर्पण, चंवर, ध्वजा, बींजना, छत्र और सुप्रतिष्ठित (स्थापना) ये अष्ट मंगल द्रव्य है।

भगवानके समवसरणकी तीन पीठिकामेंसे दूसरी पीठिका पर ये अष्टमंगल द्रव्य होते हैं।

कहानगुरु जीवन दर्शन-१

(१) भावनगर जिलेके उमराला गाँवमें कहानकुँवरका जन्मधाम।

(२) उजमबा माता जन्मगीत गाते-गाते कहानकुँवरको झूला झुला रही हैं। कहानकुंवरका ज्योतिष देखने हेतु आये ज्योतिषीका, पिताश्री मोतीचंदभाई प्रसन्नचित्तसे सत्कार करते हैं। (ज्योतिषी ज्योतिषज्ञानसे बाल कहानके बारेमें बतातें है कि, यह 'या तो जगतका तारणहार होगा या तो कोई नगरीका महाराजा होगा'।) सगे-संबंधी तेजस्वी बालकको देखकर प्रसन्न होते हैं।

कहानगुरु जीवनदर्शन-२

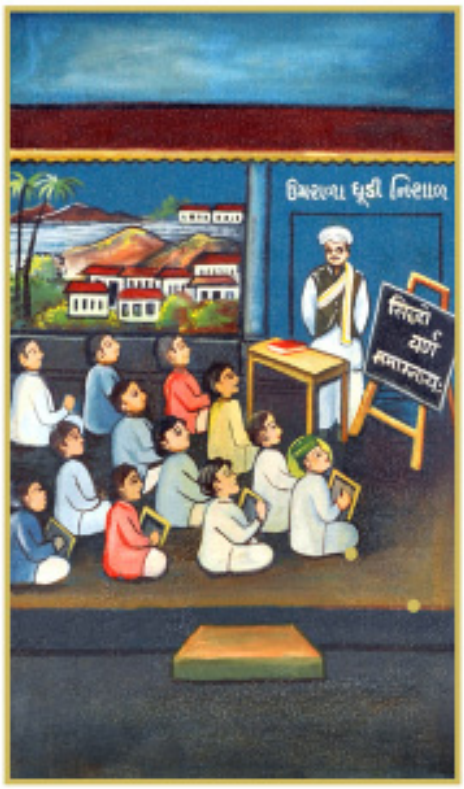

(१) जन्मधाम उमरालाकी 'धूली-शाला', जहाँ कहानकुंवरने प्रथम ही 'सिद्धोवर्ण समाम्नाय'—यह पाठ सिखे थे। (धूलीशालामें धूलमें लिखवाकर शब्दज्ञान सिखाया जाता था अतः वह 'धूली-शाला' कहलाती है।)

(२) पूर्वके धर्मसंस्कारी कहानकुंवर गारियाधार गाँवके संस्कृत वर्गमें पढ़ते हुए। 'इसमें आत्माका कुछ नहीं आता', ऐसा लगनेसे 'आत्मज्ञानहेतुशून्य संस्कृत भाषा'की पढ़ाईमें रस नहीं लगता है।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-३

भरूच जिलेके पालेज गाँवमें दुकान पर भी धर्मरसिक कहानकुंवर व्यापारकी उपेक्षापूर्वक ग्रंथोंका अध्ययन करते हैं।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-४

(१) कहानकुंवर नाटक देखते समय भी वैराग्यभावसे ओतप्रोत हो जाते थे।

(२) एक बार रामलीला देखकर वैराग्यकी धूनमें 'शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव'—इस पंक्तिसे शुरू होता एक वैराग्य रस सभर ६ पंक्तिके काव्यकी उनसे सहज रचना हो गई।

(३) दीक्षा लेनेके भाव होनेसे योग्य गुरुकी शोधमें अनेक गाँव-शहर जाते हैं।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-५

(१) विरागी कहानकुंवर, ज्येष्ठ बंधु खुशालभाईके पास दीक्षा लेनेकी अनुज्ञा मांगते हैं।

(२) जन्मभूमि उमरालामें हाथीकी अंबाड़ी पर कहानकुंवरकी दीक्षाकी भव्य यात्रा।

(३) दीक्षा विधि स्थल : राज्यका गेस्टहाऊस

कहानगुरु जीवन-दर्शन-६

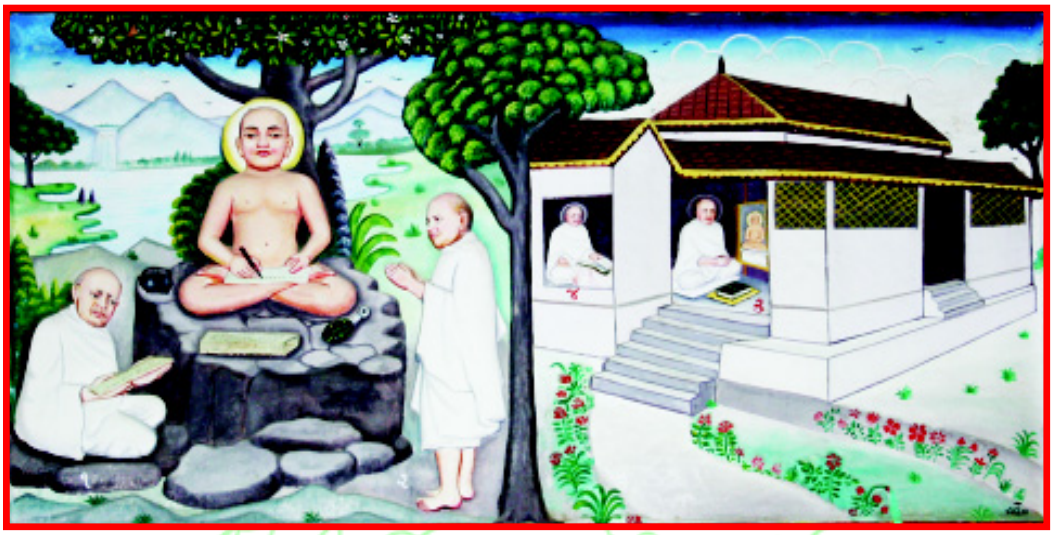

(१) पूर्वके धर्म संस्कारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके अन्तर्जीवनमें श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत परमागम समयसारके गहन अध्ययन, अवगाहन द्वारा हुआ परम पावन परिवर्तन।

(२) श्री समयसार प्रणेता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवके प्रति अपार भक्तिका चित्र द्वारा दिग्दर्शन।

(३) सोनगढके एकान्त स्थानमें—'स्टार ऑफ इन्डिया' नामक प्राचीन मकानमें—श्री पार्श्वनाथप्रभुके चित्रपट समक्ष पूज्य गुरुदेव द्वारा किया गया संप्रदाय 'परिवर्तन'।

(४) ज्ञानध्यानरत पूज्य सद्गुरुदेवश्री।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-७

पूज्य गुरुदेवश्रीका निवासस्थान व प्रवचनका स्थान : स्वाध्यायमंदिर।

(१) स्वाध्यायमंदिरके प्रवचनकक्षमें प्रवचन देते हुए पूज्य गुरुदेवश्री।

(२) स्वाध्याय ध्यानखंडमें स्वाध्याय, ध्यान रत पूज्य गुरुदेवश्री।

(३) वृक्ष तले स्वाध्यायरत पूज्य गुरुदेवश्री।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-८

(१) सोनगढ़के जिनमंदिरमें परमपूज्य श्री सीमंधरादि जिनेन्द्र भगवंतोंको अतिशय भक्तिभाव सहित वंदना करते पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी।

(२) पूज्य गुरुदेवश्रीका शास्त्रप्रवचन तथा गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रतापसे विशाल शास्त्र भंडार।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-६

(१) परम पूज्य श्री कानजीस्वामीके पावन प्रतापसे सौराष्ट्र व उसी भांति अन्य प्रांतोंमें नवनिर्मित दिगम्बर जिनमंदिर।

(२) जिनेन्द्र पंच कल्याणक।

(३) पूज्य गुरुदेवश्रीके पवित्र करकमलों द्वारा जिनबिम्ब अंकन्यास विधि।

(४) भव्य जिनेन्द्र रथयात्रा।

(५) देश-विदेश व्याप्त ज्ञानकिरण प्रसारनेवाले, जिनशासन प्रवर्तक स्वात्मानुभवी पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा पंचकल्याणक सह प्रतिमा स्थापन प्रसंग पर अध्यात्मरससभर भाववाही प्रवचन।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-१०

(१) सहस्त्राधिक भक्तोंके विशाल संघ सहित पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा श्री सम्मेदशिखर, राजगृही, पावापुरी, चंपापुरी, मंदारगिरि आदि पूर्व-उत्तर भारतके जैन तीर्थोंकी भक्तिभाव सहित की गई अनुपम यात्रा।

(२) नगर-नगरमें पूज्य गुरुदेवश्रीके भावसभर अद्भुत स्वागत तथा अध्यात्म तत्त्व भरपूर प्रभावक प्रवचन वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.स. २०२३ (ई.स. १९६७)

कहानगुरु जीवन-दर्शन-११

(१) जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें विराजमान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा श्री सीमंधर भगवानके समवसरणसभामें भरतक्षेत्रके दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द मुनिराज और गुणीयल राजकुमार।

(२) श्री सीमंधर प्रभु और कुंदकुंद योगीराजके पाससे उपलब्ध ज्ञानप्रपातका पुनित प्रवाह पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा भारतवर्षमें–देशविदेशमें फैलता है और अध्यात्मज्ञानकी हरियाली छा जाती है।

कहानगुरु जीवन-दर्शन-१२

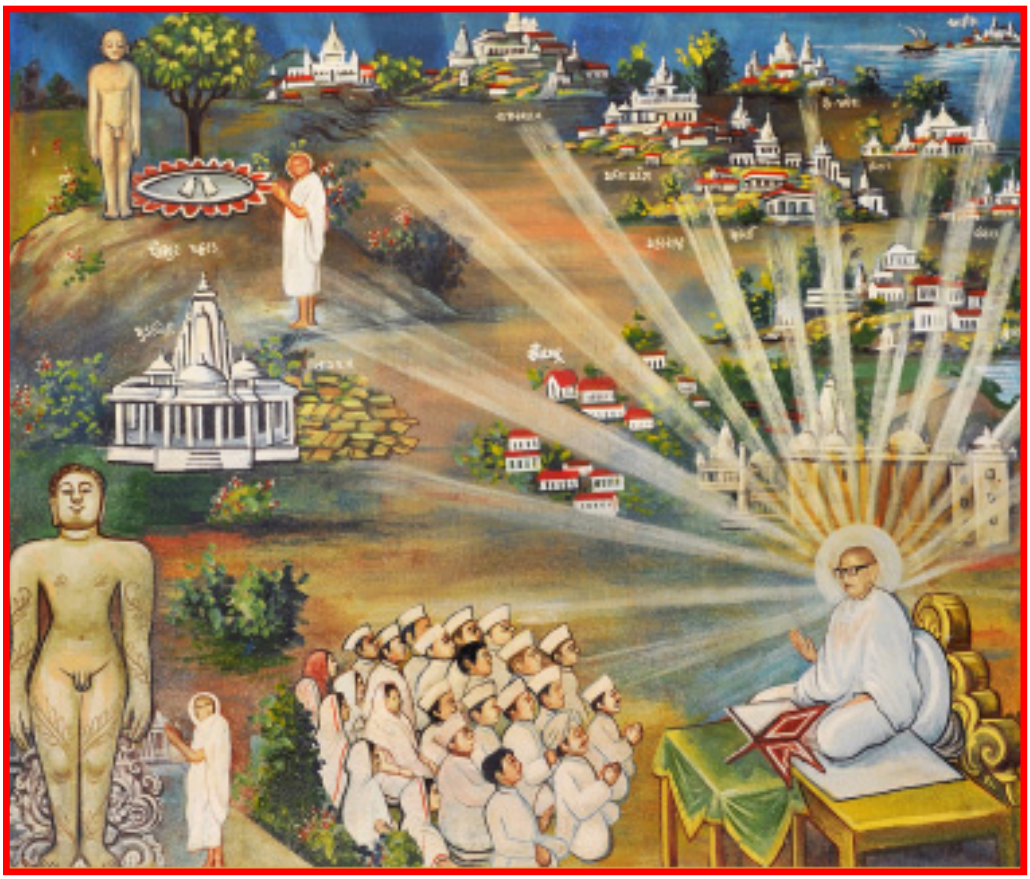

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा सहस्त्राधिक भक्तोंके विशाल संघ सहित विश्वप्रसिद्ध श्री बाहुबली (श्रवणबेलगोला), रत्ननिर्मित जिनप्रतिमाएँ तथा ताड़पत्रलिखित प्राचीन जैन शास्त्रोंके भंडार आदि वैभवयुक्त मूडबिद्री, समयसार आदि अध्यात्मश्रुतके प्रणेता श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवके चरणचिह्नसे विभूषित पोन्नूर हिल आदिकी दक्षिण भारतके तीर्थोंकी यात्रा तथा यात्रा प्रवासमें नगर-नगरमें पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मरसझरते अद्भुत प्रवचन। वि.सं. २०१५ (ई.स. १९५९) व वि.स. २०२० (ई.स. १९६४)

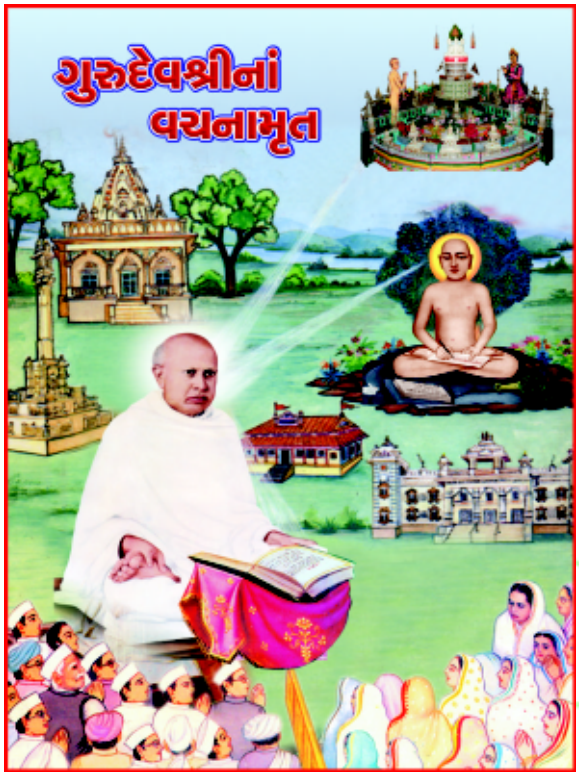

गुरुदेवश्रीके वचनामृत

'गुरुदेवश्रीके वचनामृत' नामक यह लघु संकलन अध्यात्मयुगस्रष्टा वीर-कुन्द-अमृतप्रणीत शुद्धात्ममार्ग-प्रकाशक, स्वानुभूतिविभूषित परमोपकारी परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीके श्री समयसार आदि अनेक दिगम्बर जैन शास्त्रों पर दिये गये अध्यात्मरसभरपूर प्रवचनोंमेंसे, पूज्य गुरुदेवश्रीकी पवित्र साधनाभूमि सुवर्णपुरीके मध्य 'पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी स्मारक योजना' अन्तर्गत नवनिर्मित ''श्री दिगम्बर जैन पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालय'' ''गुरुदेवश्री कानजीस्वामी वचनामृत भवन'' ''बहिनश्री चम्पाबहिन वचनामृत भवन''—इस त्रिपटी अभिधानयुक्त अति भव्य जिनमन्दिरकी दिवारोंके संगमरमर शिलापटों पर उत्कीर्ण कराने हेतु चुने गये २८७ बोलोंका संग्रह है।

वीतरागसर्वज्ञदेवप्रणीत शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप सच्चा मोक्षमार्ग मुमुक्षुजगतको बतलाकर कृपालु कहानगुरुदेवने वास्तवमें वचनातीत असाधारण महान-महान उपकार किया है। इस शताब्दीमें स्वानुभूतिप्रधान मोक्षमार्गकी जो महिमा प्रवर्तमान है, उसका सारा श्रेय पूज्य गुरुदेवश्रीको है। इन प्रवचनोंका संकलन आत्मधर्म व अनेक प्रवचन साहित्यमें करनेमें आया है। उसमेंसे वीतरागमार्ग प्रकाशक प्रवचनांशोंको इस वचनामृतमें संकलन किया गया है।

यह पुस्तक 'गुरुदेवश्रीके वचनामृत'का उद्भव किस प्रकार हुआ वह हम देखे :—

पूज्य गुरुदेवश्रीकी साधनाभूमिमें—सुवर्णपुरीके—प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी—रात्रीकालिन महिलाशास्त्रसभामें उच्चरित—स्वानुभवरस-झरती तथा देव-गुरु-भक्तिभीनी अध्यात्मवाणी पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें 'बहिनश्रीके वचनामृत'रूपमें वि.सं. २०३३(ई.स. १९७७)में प्रकाशित हुई थी। उसमें समाविष्ट अध्यात्मके तलस्पर्शी गहरे रहस्योंसे पूज्य गुरुदेव बहुत ही प्रसन्न एवं प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी प्रसन्न भावना व्यक्त करते हुए ट्रस्टके अध्यक्ष श्री रामजीभाई दोशीसे कहा : भाई! यह 'वचनामृत' पुस्तक इतना अच्छा है कि इसकी एक लाख प्रतियाँ छपवाना चाहिये'। 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तक सम्बन्धकी पूज्य गुरुदेवश्रीकी ऐसी असाधारण प्रसन्नता एवं अहोभाव देखकर–सुनकर कुछ-एक मुमुक्षुओंको उसे संगमरमरके शिलापटों पर उत्कीर्ण करानेकी भावना व्यक्त की–'वचनामृत खुदवाकर बहिनके (पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके) नामका एक नया स्वतंत्र मकान बनना चाहिए'—ऐसा भाव पूज्य गुरुदेवश्रीका जानकर माननीय श्री रामजीभाईने उनके अहोभाव साकार करनेका निर्णय किया कि—'बहिनश्री चम्पाबेन वचनामृतभवन'का निर्माण करवाया जाये; वि.सं. २०३७ (ई.स. १९८०), कार्तिक शुक्ला पंचमीके शुभ दिन पूज्य गुरुदेवश्रीके मंगल हस्तसे शिलान्यासकी ईंटों पर स्वस्तिक अंकन आदि विधि द्वारा इस भवनका शिलान्यास हुआ।

शिलान्यासविधि सम्पन्न होनेके पश्चात् कुछ दिनोंमें (पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुपस्थितमें) ट्रस्टीयोंने तथा मुख्य कार्यकर्ताओंने 'वचनामृतभवन'का विस्तृतीकरण करके उसमें पंचमेरु-नंदीश्वरकी प्रतिष्ठित रचना की जाये और 'गुरुदेवश्रीके वचनामृत' भी उत्कीर्ण कराये जायें,—ऐसा निर्णय किया। तदनुसार गुरुदेवश्रीके साहित्य समुद्रमेंसे वीतरागमार्गको स्पष्ट करनेवाले कुछ-एक बोल चुनकर 'गुरुदेवश्रीके वचनामृत'का यह संकलन श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्टने तैयार करवाया, और उसका संगमरमरके शिलापटों पर खुदाई काम भी हुआ।

आशा हैं कि तत्त्वरसिक जिज्ञासु जीव गुरुदेवश्रीकी स्वानुभवरसपूरित ज्ञानधारामेंसे प्रवाहित इस शुद्धात्मतत्त्वस्पर्शी 'वचनामृत' द्वारा आत्मार्थको पुष्ट करके, साधनाकी सच्ची दिशा प्राप्त करके, अपने साधनामार्गको उज्ज्वल एवं सुधास्यन्दी बनायेंगे।

भगवान श्री आदिनाथको आहारदान

येयायायाययेयाय नानानूनाननानन।
ममाममाममामामितातततीतिततीतितः ।। –आचार्य समन्तभद्रदेव

अर्थ :–हे ऋषभदेव भगवन्! आपका यह मोक्षमार्ग उन्हीं जीवोंको प्राप्त हो सकता है जो कि पुण्यबन्धके सन्मुख है अथवा जिन्होंने पहले पुण्यबन्ध कर लिया है। समवसरणमें आपके चार मुख दिखाई देते हैं, आपका केलवज्ञान भी पूर्ण है—संसारके सब पदार्थोंको एक साथ जानता है। यद्यपि आप ममताभावसे–मोहपरिणामोंसे–रहित हैं तथापि संसारसम्बन्धी अनेक बड़ी-बड़ी व्याधियोंको नष्ट कर देते हैं। हे प्रभो! मेरे भी जन्म-मरणरूप रोगोंको नष्ट कर दीजिये।

(१) **संयम तीर्थके आदि प्रवर्तक वर्षोपवासी तीर्थंकर आदिनाथ मुनिराज पधारते हैं।**

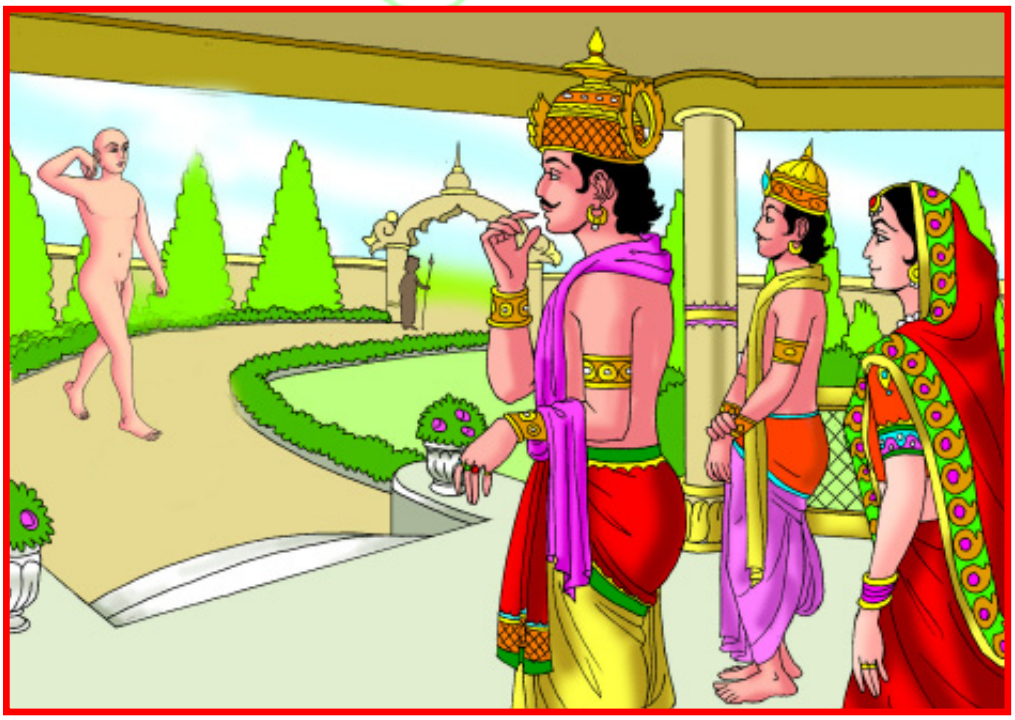

आहार हेतु पधारते मुनिराज श्री आदिनाथको देखकर श्रेयांसकुमारको होता जातिस्मृतिज्ञान
मुनिराज श्री आदिनाथको नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देते श्री श्रेयांसकुमार

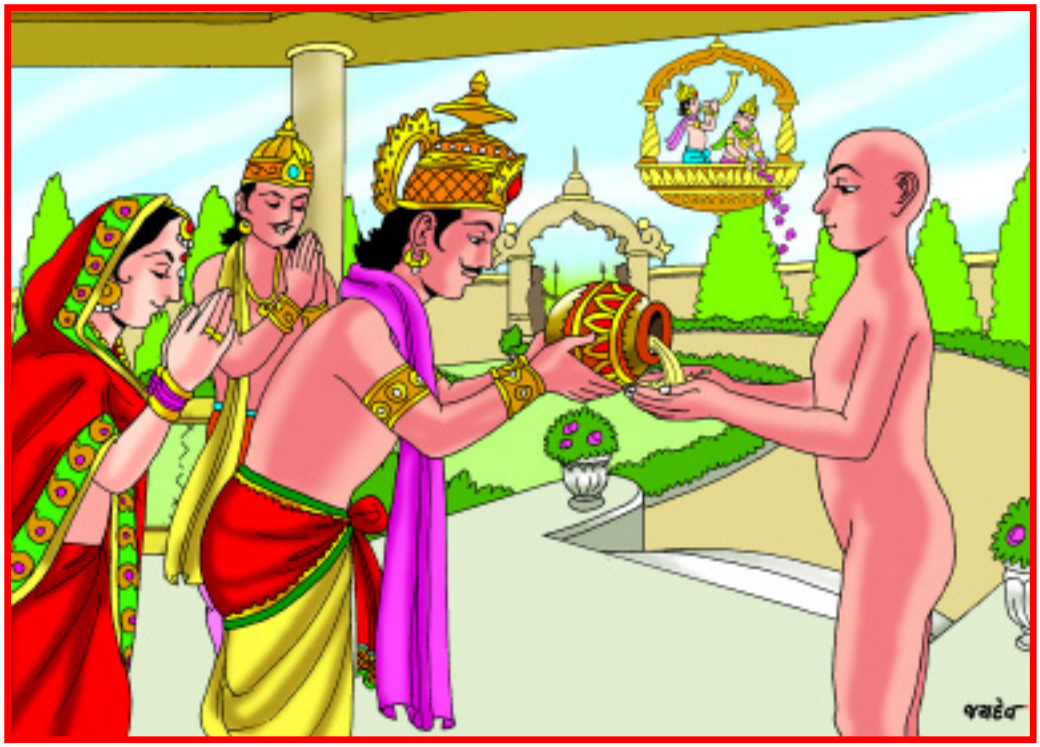

(२) राजा श्रेयांसकुमार व उनके ज्येष्ठ बंधु सोमप्रभ अत्यंत भक्ति सहित (मुनिराज)को पड़गाहन करते हैं।

(३) राजा श्रेयांसकुमारको योगीराज आदिनाथका निर्ग्रंथ रूप देखते ही प्रकट हुए जातिस्मरणज्ञान द्वारा (पूर्व आठवें भवमें स्वयं वज्रजंघ राजा आदिनाथके जीवके साथ उनकी रानी श्रीमतीके रूपमें) वनमें दो मुनिराजोंको दिया आहारदानका स्मरण। आहारदानकी विधि जानकर श्रेयांसकुमार नवधा भक्तिपूर्वक इक्षुरसका आहारदान देते हैं।

(४) इस भव्य प्रसंग पर दैवी रत्नों तथा पुष्पोंकी वर्षा, दुंदुभिनाद आदि पंचाश्चर्य होते हैं। (वैशाख शुक्ला-३)

(विस्तृत कथा हेतु देखें जैन पौराणिक कथा भाग ४, पृष्ठ ८१)

चेलना द्वारा जिनमंदिरोंकी स्थापना

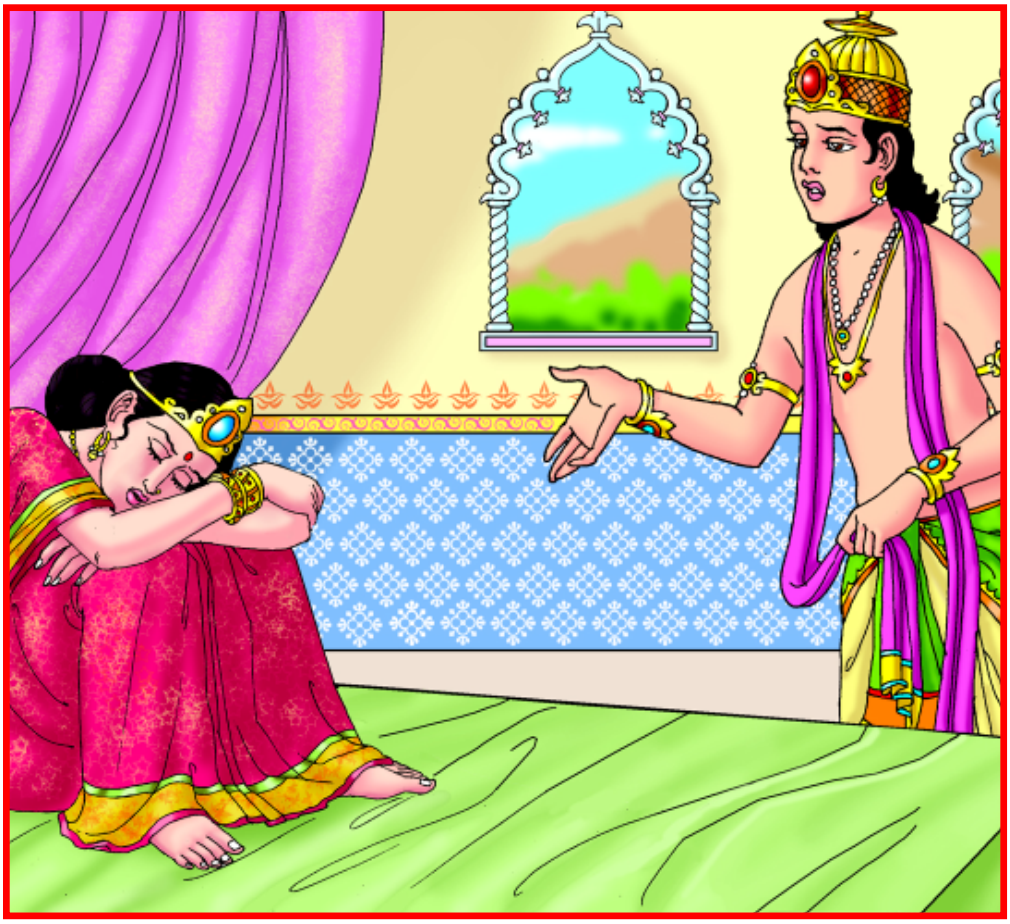

महारानी चेलना द्वारा राजा श्रेणिककी नगरीमें जिनमंदिर न देख विलाप तथा राजा श्रेणिक द्वारा उन्हें जैन धर्म अनुसरनेकी इजाजत

मगधाधिपति राजा श्रेणिकके अन्यधर्मी होनेसे उसकी चेलनाराणी दुःखी होती है और कहती हैं कि 'हे राजन्! वीतराग जैनधर्म बिनाके इस राज्यको धिक्कार है।' राजा उन्हें जैनधर्म अनुसरनेकी इजाजत देते हैं। रानी जिनमंदिर निर्माण, जिनपूजा आदि द्वारा जैनधर्मका बहुत प्रचार करती है।

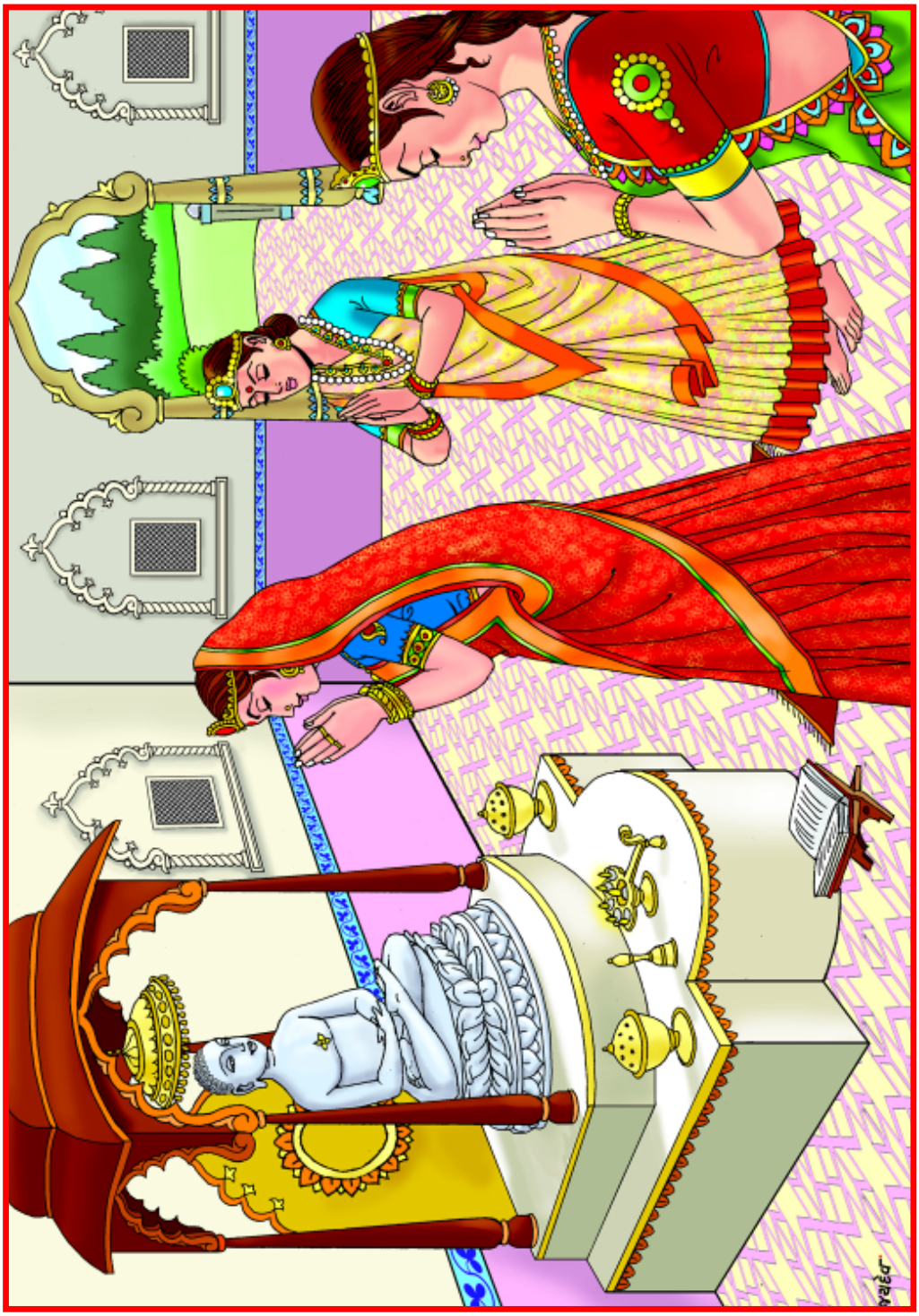

जिनमंदिरमें दर्शन–पूजा आदि करती महारानी चेलना

भगवान महावीरका समवसरण

मगधेश अनुक्रमसे जिनधर्मी होता है और राजगृही नगरीके समीप विपुलाचल पर्वत पर श्री महावीरस्वामी भगवानके समवसरणमें जाकर अत्यंत भक्तिपूर्वक वंदना करके उनका धर्मोपदेश सुनते है।

तत्पश्चात् राजगृह नगरके विपुलाचल पर्वत पर भव्योंके भाग्यसे भगवान महावीर कई बार समवसरण सहित पधारते है। उसमें राजा श्रेणिक भी भगवानके समवसरणमें भक्तिभाव सह जाते और सविनयभावसे भगवानकी देशनाका पान करते थे।

विस्तृत कथा हेतु देखे (१) जैन पौराणिक लघुकथा भाग-१ पृ. २४ तथा (२) जैन पौराणिक लघुकथा भाग-२ पृ. ८

जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-६

प्रस्तुत आवृत्तिके प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशी

रु. ५०००/– श्री शकुन्तलाबेन पवनकुमार जैन

रु. १०००/– श्री सज्जनलालजी बंडी

रु. १०००/– श्री रश्मिबेन देवेन्द्रकुमार जैन

रु. १०००/– एक मुमुक्षु

रु. १०००/– श्री तीर्थेश विमलेशकुमार जैन, सोनगढ

रु. १०००/– श्री वीणाबेन

रु. १०००/– श्री निर्मलभाई जैन

रु. १०००/– श्री कुसुमबेन ज्ञानचंदजी जैन, सोनगढ

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.